॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद ॥

॥ अथ षष्ठं काण्डम् ॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १- अमृतप्रदाता सूक्त 11

सूक्त २- जेताइन्द्र सूक्त 13

सूक्त ३- आत्मगोपन सूक्त 15

सूक्त ४-आत्मगोपन सूक्त 17

सूक्त ५- वर्चः प्राप्ति सूक्त 19

सूक्त ६-शत्रुनाशन सूक्त 21

सूक्त ७ – असुरक्षयण सूक्त 23

सूक्त ८ – कामात्मा सूक्त 25

सूक्त ९ – कामात्मा सूक्त 27

सूक्त १० – संप्रोक्षण सूक्त 29

सूक्त ११ – पुंसवन सूक्त 31

सूक्त १२ – सर्पविषनिवारण सूक्त 33

सूक्त १३ – मृत्युञ्जय सूक्त 35

सूक्त १४ – बलासनाशन सूक्त 37

सूक्त १५ – शत्रुनिवारण सूक्त 39

सूक्त १६ – अक्षिरोगभेषज सूक्त 41

सूक्त १७ – गर्भदेहण सूक्त 43

सूक्त १८ – ईर्ष्याविनाशन सूक्त.. 45
सूक्त १९ – पावमान सूक्त 47
सूक्त २० – यक्ष्मनाशन सूक्त 49
सूक्त २१ – केशवर्धनी औषधि सूक्त 51
सूक्त २२ – भैषज्य सूक्त 53
सूक्त २३ – अपभैषज्य सूक्त.. 55
सूक्त २४- अपांभैषज्य सूक्त.. 57
सूक्त २५- मन्याविनाशन सूक्त 59
सूक्त २६ – पाप्मनाशन सूक्त 61
सूक्त २७ – अरिष्टक्षयण सूक्त.. 63
सूक्त २८ – अरिष्टक्षयण सूक्त.. 65
सूक्त २९ – अरिष्टक्षयण सूक्त.. 67
सूक्त ३० – पापशमन सूक्त 69
सूक्त ३१ – गौ सूक्त.. 71
सूक्त ३२ – यातुधानक्षयण सूक्त.. 73
सूक्त ३३ – इन्द्रस्तव सूक्त.. 75
सूक्त ३४ – शत्रुनाशन सूक्त 77
सूक्त ३५ – वैश्वानर सूक्त 80
सूक्त ३६ – वैश्वानर सूक्त 82
सूक्त ३७ – शापनाशन सूक्त.. 84

सूक्त ३८ – वर्चस्य सूक्त 86
सूक्त ३९ - वर्चस्य सूक्त 89
सूक्त ४० – अभय सूक्त 91
सूक्त ४१ – दीर्घायुप्राप्ति सूक्त 93
सूक्त ४२- परस्परचित्तैकीकरण सूक्त 95
सूक्त ४३ – मन्युशमन सूक्त 97
सूक्त ४४ – रोगनाशन सूक्त 99
सूक्त ४५ – दुःष्वप्ननाशन सूक्त 101
सूक्त ४६ – दुष्वप्ननाशन सूक्त 103
सूक्त ४७ – दीर्घायुप्राप्ति सूक्त 105
सूक्त ४८ – स्वस्तिवाचन सूक्त 107
सूक्त ४९ – अग्निस्तवन सूक्त 109
सूक्त ५० – अभययाचना सूक्त 111
सूक्त ५१ – एनोनाशन सूक्त 113
सूक्त ५२ – भैषज्य सूक्त 115
सूक्त ५३ – सर्वतोरक्षण सूक्त 117
सूक्त ५४ – अमित्रदम्भन सूक्त 119
सूक्त ५५ – सौमनस्य सूक्त 121
सूक्त ५६ – सर्परक्षण सूक्त 123
सूक्त ५७ – जलचिकित्सा सूक्त 125

सूक्त ५८ – यशःप्राप्ति सूक्त.. 127
सूक्त ५९ – औषधि सूक्त 129
सूक्त ६० – पतिलाभ सूक्त 131
सूक्त ६१ – विश्वस्रष्टा सूक्त 133
सूक्त ६२ – पांवमान सूक्त... 135
सूक्त ६३ – वर्चोंबलप्राप्ति सूक्त 137
सूक्त ६४ – सांमनस्य सूक्त 139
सूक्त ६५ – शत्रुनाशन सूक्त... 141
सूक्त ६६ – शत्रुनाशन सूक्त... 143
सूक्त ६७ – शत्रुनाशन सूक्त... 145
सूक्त ६८ – वपन सूक्त 147
सूक्त ६९ – वर्चस् प्राप्ति सूक्त 149
सूक्त ७० – अध्न्या सूक्त 151
सूक्त ७१ – अन्न सूक्त... 153
सूक्त ७२ – वाजीकरण सूक्त.. 155
सूक्त ७३ – सांमनस्य सूक्त 157
सूक्त ७४ – सांमनस्य सूक्त 159
सूक्त ७५ – सपत्नक्षयण सूक्त... 161
सूक्त – ७६ आयुष्य सूक्त.. 163
सूक्त ७७ – प्रतिष्ठापन सूक्त... 165

सूक्त ७८ – धनप्राप्ति प्रार्थना सूक्त 167
सूक्त ७९ – ऊर्जाप्राप्ति सूक्त 169
सूक्त ८० – अरिष्टक्षयण सूक्त 171
सूक्त ८१- गर्भाधान सूक्त 173
सूक्त ८२ – जायाकामना सूक्त 175
सूक्त ८३ – भैषज्य सूक्त 177
सूक्त ८४ – नितिमोचन सूक्त 179
सूक्त ८५ – यक्ष्मनाशन सूक्त 182
सूक्त ८६ – वृषकामना सूक्त 184
सूक्त ८७ – राज्ञः संवरण सूक्त 186
सूक्त ८८ – ध्रुवोराजा सूक्त 188
सूक्त ८९ – प्रीतिसंजनन सूक्त 190
सूक्त ९० – इषुनिष्कासन सूक्त 192
सूक्त ९१ – यक्ष्मनाशन सूक्त 194
सूक्त ९२ – वाजी सूक्त 196
सूक्त ९३ – स्वस्त्ययन सूक्त 198
सूक्त ९४ – सांमनस्य सूक्त 200
सूक्त ९५ – कुष्ठौषधि सूक्त 202
सूक्त ९६ – चिकित्सा सूक्त 204
सूक्त ९७ – अभिभूर्वीर सूक्त 206

सूक्त ९८ – अजरक्षत्र सूक्त 208
सूक्त ९९ – संग्रामजय सूक्त 210
सूक्त १०० – विषदूषण सूक्त.. 212
सूक्त १०१ – वाजीकरण सूक्त.. 214
सूक्त १०२-अभिसांमनस्य सूक्त 216
सूक्त १०३- शत्रुनाशन सूक्त 218
सूक्त १०४ – शत्रुनाशन सूक्त.. 220
सूक्त १०५ – कासशमन सूक्त 222
सूक्त १०६ – दूर्वाशाला सूक्त.. 224
सूक्त १०७ – विश्वजित् सूक्त 226
सूक्त १०८- मेधावर्धन सूक्त.. 228
सूक्त १०९ – पिप्पलीभैषज्य सूक्त 231
सूक्त ११० – दीर्घायु सूक्त.. 233
सूक्त १११- उन्मत्ततामोचन सूक्त.. 235
सूक्त ११२- पाशमोचन सूक्त 237
सूक्त ११३ – पापनाशन सूक्त.. 239
सूक्त ११४- उन्मोचन सूक्त.. 241
सूक्त ११५ – पापमोचन सूक्त 243
सूक्त ११६ – मधुमदन्न सूक्त 245
सूक्त ११७ – आनृण्य सूक्त.. 247

सूक्त ११८ – अनृण्य सूक्त 249
सूक्त ११९ – पाशमोचन सूक्त 251
सूक्त १२० – सुकृतलोक सूक्त 253
सूक्त १२१ – सुकृतलोकप्राप्ति सूक्त 255
सूक्त १२२ – तृतीयनाक सूक्त 257
सूक्त १२३ – सौमनस्य सूक्त 260
सूक्त १२४ – नित्यपस्तरण सूक्त 263
सूक्त १२५ – वीर-रथ सूक्त 265
सूक्त १२६ – दुन्दुभि सूक्त 267
सूक्त १२७ – यक्ष्मनाशन सूक्त 269
सूक्त १२८ – राजा सूक्त 271
सूक्त १२९ – भगप्राप्ति सूक्त 273
सूक्त १३० – स्मर सूक्त 275
सूक्त १३१ – स्मर सूक्त 277
सूक्त १३२ – स्मर सूक्त 279
सूक्त १३३ – मेखलाबन्धन सूक्त 281
सूक्त १३४ – शत्रुनाशन सूक्त 284
सूक्त १३५ – बलप्राप्ति सूक्त 286
सूक्त १३६ – केशदृहण सूक्त 288
सूक्त १३७ – केशवर्धन सूक्त 290

सूक्त १३८ – क्लीबत्व सूक्त 292
सूक्त १३९ – सौभाग्यवर्धन सूक्त 295
सूक्त १४०- सुमङ्गलदन्त सूक्त.. 298
सूक्त १४१ – गोकर्णलक्ष्यकरण सूक्त.. 300
सूक्त १४२ – अन्नसमृद्धि सूक्त 302

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १- अमृतप्रदाता सूक्त

सविता देव की स्तुति

दोषो गाय बृहद्गाय द्युमद्धेहि ।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥६,१.१॥

हे आथर्वण ! (ऋषि अथर्वा के अनुयायी अथवा अविचल ब्रह्म के ज्ञाता) आप बृहत्साम का गायन करें, रात में भी गाएँ । देव सविता (सबके उत्पन्न कर्ता) की स्तुति करें ॥६,१.१॥

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः ।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥६,१.२॥

जो (जीव मात्र को) भव सागर में सत्य की प्रेरणा देने वाले हैं, सदैव युवा रहने वाले, सुख देने वाले तथा द्रोहरहित (सबके लिए हितकारी) वचन बोलने वाले हैं, उन (सविता देव) की स्तुति करें ॥६,१.२॥

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि ।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥६,१.३॥

वह सवितादेव (उक्त) दोनों प्रकार के श्रेष्ठ गायन (मंत्र पाठ) के आधार पर पर्याप्त मात्रा में हमें अमृत अनुदान देते रहें ॥६,१.३॥

सूक्त २- जेताइन्द्र सूक्त

इंद्र के लिए सोमरस का प्रबंध

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥६,२.१॥

हे याजको ! आप हमारी प्रार्थना को आदरपूर्वक सुनने वाले देवराज इन्द्र के लिए सोमरस निचोड़ें और अच्छी तरह परिशोधित-परिमार्जित करें ॥६,२.१॥

आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः ।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥६,२.२॥

जिनके पास अभिषुत सोम उसी प्रकार पहुँच जाता है, जैसे वृक्ष के पास पक्षी; ऐसे हे विज्ञानी वीर (इन्द्रदेव ! आप आसुरी प्रवृत्ति वालों को विनष्ट करें ॥६,२.२॥

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥६,२.३॥

हे अध्वर्यो ! सोमपान करने वाले, शत्रुहन्ता, वज्रधारी इन्द्रदेव के लिए सोम अभिषुत करें । चिरयुवा, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, यजमानों की कामना की सिद्धि करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥६,२.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ३- आत्मगोपन सूक्त

इंद्र और पूषा देव की स्तुति

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात्सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥६,३.१॥

हे इन्द्र और पूषन् देवता ! आप हमारी रक्षा करें । देव जननी अदिति और उनचास मरुद्गण हमारी रक्षा करें । "अपांनपात्" (जल को अपने स्थान से विचलित न होने देने वाले अन्तरिक्षीय विद्युत्रूप अग्निदेव) एवं सातों समुद्र हमारी रक्षा करें । द्युलोक एवं प्रजापालक विष्णुदेव भी हमारी रक्षा करें ॥६,३.१॥

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टयह पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा यह अस्य पायवः ॥६,३.२॥

अभीष्ट कामना की पूर्ति के लिए द्युलोक और पृथ्वीलोक हमारी रक्षा करें। सोमाभिषव करने का पत्थर, निष्पन्न सोम और श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाली सरस्वती (विद्या की अधिष्ठात्री देवी) हमें पाप से बचाएँ। अग्निदेव अपने रक्षक प्रवाहों से हमारी सुरक्षा करें ॥६,३.२॥

पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम्
।
अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद्देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातयह ॥६,३.३॥

पालक अश्विदेव हमारी रक्षा करें। दिन और रात्रि के देवता उषासानक्ता हमें सुरक्षित रखें। मेघ जल को स्थिर रखने वाले (अग्निदेव) हिंसकों से हमें बचाएँ। हे त्वष्टादेवता! आप सब तरह के विकास के लिए हमारी वृद्धि करें ॥६,३.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ४-आत्मगोपन सूक्त

त्वष्टा, अदिति और अश्विनीकुमारों की स्तुति

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥६,४.१॥

सबका निर्माण करने वाले देव त्वष्टा, सुखवर्षक पर्जन्य, सत्यज्ञान – सम्पन्न ब्रह्मणस्पति और अपने पुत्र एवं भाइयों (देवताओं) के साथ अदिति हमारी देवोचित स्तुति को सुनें और हम सबके दुर्धर्ष तथा पोषक बल की रक्षा करें ॥६,४.१॥

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥६,४.२॥

अंश, भग, वरुण, मित्र और अर्यमा तथा अदिति एवं समस्त मरुद्गण हमारी रक्षा करें । देवगण हमारी रक्षा उस शत्रु से

करें, जो हमारा अनिष्ट करना चाहता हो । हमसे दूर हुआ वह हिंसक द्वेष, शत्रु को दूर भगा दे ॥६,४.२॥

धियह समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्न् अप्रयुछन् । द्यौष्पितर्यावय दुछुना या ॥६,४.३॥

हे अश्विदेवो ! आप हमारी सद्बुद्धि एवं यज्ञादि पवित्र कर्म का भली प्रकार रक्षण करें । हे विस्तीर्ण गमनशील वायुदेवता ! आप प्रमादरहित होकर हमें सुरक्षा प्रदान करें । हे प्राणिपालक द्यौः ! दुःशुना (दुर्गति ण कुत्ते की दुष्प्रवृत्ति) को हमसे दूर भगा दें ॥६,४.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ५- वर्चः प्राप्ति सूक्त

अग्नि और इंद्र की स्तुति

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत ।
समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥६,५.१॥

हे अग्निदेव ! आप घृत द्वारा आवाहनीय हैं। आप अपने याजक को उत्तम स्थान प्रदान करके श्रेष्ठ बनाएँ और शरीर को तेजस् – सम्पन्न बनाएँ एवं पुत्र-पौत्रादि सन्तानों की वृद्धि करें ॥६,५.१॥

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद्वशी ।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥६,५.२॥

हे इन्द्र ! इस (मानव या याजक) को ऊर्ध्वगामी बनाएँ । यह आपके प्रसाद से स्वजातियों में सर्वश्रेष्ठ, स्वतन्त्र और

सबको वश में करने वाला हो। इसे प्रचुर धन से पुष्ट करके, सुखपूर्वक जोकर, शतायु वाला बनाएँ ॥६,५.२॥

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥६,५.३॥

हे अग्ने ! जिसके घर में हम यज्ञादि अनुष्ठान करें, आप उसे श्री-समृद्धि से सम्पन्न करें । सोम और ब्रह्मणस्पति देवता उसे आशीर्वचन प्रदान करें ॥६,५.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ६-शत्रुनाशन सूक्त

ब्रह्मणस्पति व सोम की प्रशंसा

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥६,६.१॥

हे ब्रह्मणस्पते ! जो शत्रु देव- विमुख होकर हमें समाप्त करने की इच्छा करता है, आप उसे हमारे सोमाभिषव करने वाले याजक के वश में कर दें ॥६,६.१॥

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥६,६.२॥

हे सोम ! श्रेष्ठ विचार वाले हम पर, जो कटुभाषी शत्रु शासन करें, आप उनके मुँह पर वज्र से आघात करें, जिससे वह विचूर्ण होकर दूर हो जाएँ ॥६,६.२॥

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥६,६.३॥

हे सोम ! जो स्वजातीय अथवा विजातीय (निकृष्ट) शत्रु हमारा विनाश करें, अन्तरिक्ष से गिरने वाली बिजली की तरह आप उनके बल और सैन्य दल का संहार कर दें ॥६,६.३॥

सूक्त ७ – असुरक्षयण सूक्त

सोम से कल्याण की याचना

यहन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।
तेना नोऽवसा गहि ॥६,७.१॥

हे सोम ! आपके जिस सुनियम के कारण देवयान नामक मार्ग पर मित्र आदि द्वादश आदित्य और उनकी माता अदिति बिना एक दूसरे से टकराए चलते हैं । आप वैसी ही भावना लेकर हमारी रक्षा करने को आएँ ॥६,७.१॥

यहन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः ।
तेना नो अधि वोचत ॥६,७.२॥

हे अजेय शक्तियुक्त सोम ! जिस शक्ति से आप हमारे शत्रुओं को परास्त करते हैं, उसी शक्ति के साथ हमें आशीर्वाद प्रदान करें ॥६,७.२॥

यहन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।
तेना नः शर्म यछत ॥६,७.३॥

हे देवो ! आपने अपनी जिस शक्ति से देव विरोधी असुरों के बल और आयुध प्रहारक शत्रुओं के बल को समाप्त करके जीत लिया था, उसी बल से हमें सुख प्रदान करें ॥६,७.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ८ – कामात्मा सूक्त

कामात्मा का वर्णन

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन् नापगा असः ॥६,८.१॥

(हे देवि !) जिस प्रकार 'वेल' वृक्ष के सहारे ऊपर उठती है, उसी प्रकार तुम मेरी कामना वाली होकर, मेरे साथ सघनता से जुड़ी रहो और मुझसे दूर न जाओ ॥६,८.१॥

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन् नापगा असः ॥६,८.२॥

ऊपर उड़ता हुआ गरुड़ जैसे अपने पंखों को नीचे दबाता है, उसी प्रकार तुझे ऊर्ध्वगामी (तेरी प्रगति) बनाने के लिए

तेरे मन को अपनी ओर लाता हूँ, जिससे तुम मेरे प्रति कामना वाली होकर हमारे पास रहो ॥६,८.२॥

यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन् नापगा असः ॥६,८.३॥

सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी आदि लोकों को प्रकाश से संव्याप्त कर लेता है, उसी प्रकार हम अपने प्रभाव से तुम्हारे मन को आकर्षित करते हैं। जिससे तुम हमारे प्रति कामना वाली होकर हमारे पास रहो, दूर न जाओ ॥६,८.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ९ – कामात्मा सूक्त

कामात्मा का वर्णन

वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥६,९.१॥

तुम मेरे शरीर और दोनों पैरों की इच्छा वाली हो । मेरे दोनों नेत्र और दोनों जंघाओं की कामना वाली हो । मेरे अंग-प्रत्यंग को स्नेह भरी दृष्टि से देखो । सेचन की कामनायुक्त तुम्हारी आँखें और केश मेरे चित्त को सुखाते (प्रेरित करते हैं ॥६,९.१॥

मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥६,९.२॥

मैं तुम्हें अपनी बाहुओं और हृदय में आश्रय लेने वालों बनाता हैं, जिससे तुम मेरे कार्य में कुशल तथा मेरे चित्त के अनुरूप चलने वाली बनो ॥६,९.२॥

यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतं गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥६,९.३॥

जिसकी नाभि हर्षदायक तथा हृदय स्नेहयुक्त हैं, उस (स्त्री आदि) को घृत उत्पादक गोएँ (या किरणं) हमारे साथ संयुक्त करें ॥६,९.३॥

सूक्त १० – संप्रोक्षण सूक्त

अग्नि और वायु की स्तुति

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयहऽधिपतयह स्वाहा ॥६,१०.१॥

विशाल पृथ्वी, शब्द महण करने वाली इन्द्रिय (श्रोत्र) या पृथ्वी के श्रोत्ररूप दिशाओ, वृक्ष – वनस्पतियों के अधिष्ठातादेव और पृथ्वी के स्वामी अग्निदेव के लिए यह उत्तम हवि समर्पित है ॥६,१०.१॥

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतयह स्वाहा ॥६,१०.२॥

जीव मात्र में संचरित होने वाले, जीव मात्र को चैतन्य करने वाले प्राण के लिए तथा उसके विचरण – स्थान अंतरिक्ष के लिए आहुतियाँ समर्पत हैं। अंतरिक्ष में विचरने वाले पक्षी

और उसके अधिष्ठातादेव तथा वायु के लिए यह हवि अर्पित है ॥६,१०.२॥

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतयह स्वाहा ॥६,१०.३॥

प्रकाशरूप द्‌युलोक के लिए, उसको ग्रहण करने वाली इन्द्रिय चक्षु के लिए उसके प्रकाश से प्रकाशित नक्षत्र के लिए और उसके स्वामी प्राणियों के प्रेरक सूर्य के लिए यह आहुतियाँ समर्पित हैं ॥६,१०.३॥

सूक्त ११ – पुंसवन सूक्त

पुंसवन कर्म का वर्णन

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥६,११.१॥

शमी पर जब अश्वत्थं आरूढ़ होता है, तो पुंसवन किया जाता है । इससे पुत्र प्राप्ति का योग बनता है। उस प्रभाव को हम स्त्रियों में भर देते हैं ॥६,११.१॥

पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत्॥६,११.२॥

पुरुषत्व ही रेतस् (उत्पादक शुक्र) बनता है। उसका आधान स्त्री में किया जाता है, तब पुत्र-उत्पत्ति का योग बनता है । यह प्रजापति (प्रजा उत्पन्न करने वाले देव या विशेषज्ञों का कथन है ॥६,११.२॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधतिह ॥६,११.३॥

अन्यत्र (उक्त अनुशासन से भिन्न स्थिति में) प्रजापति तथा अनुमति एवं सिनीवाली देवियाँ गर्भधारण कराती हैं, तो 'स्त्रेषुय' (कन्या उत्पत्ति) का योग बनता है, किन्तु उसे (पूर्वोक्त मर्यादा से पुत्र की ही उत्पत्ति होती हैं ॥६,११.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १२ – सर्पविषनिवारण सूक्त

विष निवारण वर्णन

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् ।
रात्री जगदिवान्यद्धंसात्तेना ते वारयह विषम् ६,१२.॥१॥

जिस प्रकार सूर्य द्युलोक को जानते हैं, उसी प्रकार हम सभी सर्पो के जन्म के ज्ञाता हैं। जिस प्रकार से रात्रि संसार को सूर्य से परे कर देती हैं, वैसे ही हम विष का निवारण करते हैं ॥६,१२.१॥

यद्ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद्देवैर्विदितं पुरा ।
यद्भूतं भव्यमासन्वत्तेना ते वारयह विषम् ॥६,१२.२॥

ब्राह्मणों, ऋषियों तथा देवों ने जिस उपचार को पहले जान लिया था, जो भूत और भविष्यत् (दोनों कालों) में रहने वाला है, उससे हम तेरा (सर्प का) विष दूर करते हैं ॥६,१२.२॥

मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु ।
मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥६,१२.३॥

(सर्प विष से ग्रसित रोगी को) मधु से सिंचित करता हूँ । नदी, पर्वत, छोटे-छोटे टीले यह सभी मधु(औषधि प्रभाव) युक्त स्थान हैं। शीपाला (शैवाल वाली शान्त), परुष्णी (घुमावदार जल धाराएँ अथवा उक्त नामवाली नदियाँ मधुयुक्त हैं। विषनाशक मधु हृदय एवं मुख के लिए शान्ति देने वाला हो ॥६,१२.३॥

सूक्त १३ – मृत्युञ्जय सूक्त

मृत्यु की स्तुति

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो यह विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥६,१३.१॥

देव (विद्वान् ब्राह्मणों के मारक आयुधों को नमन हैं । राजाओं के संहारकारक अस्त्र-शस्त्रों को नमस्कार है । वैश्यों, धनवानों के द्वारा होने वाली मृत्यु से बचाने के लिए आप को नमस्कार है ॥६,१३.१॥

नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै ते इदं नमः ॥६,१३.२॥

हे मृत्यो ! आपकी पक्षपातपूर्ण बात की सूचना देने वाले दूत को नमस्कार हो, आपके पराभव की सूचना देने वाले दूत को नमस्कार हो । हे मृत्यो ! आपकी कृपालु बुद्धि को

नमस्कार है एवं आपकी दण्ड प्रदान करने वाली (कठोर) बुद्धि को भी हम नमस्कार करते हैं ॥६,१३.२॥

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥६,१३.३॥

हे मृत्यो ! मेरे लिए आपको बुलाने वाले यातुधान (रोगादि शत्रु, शस्त्रादि) को नमन है और आपसे रक्षा करने वाली औषधियों वह शक्तियों को नमस्कार है । आपको प्राप्त कराने वाले मूल कारणों को नमस्कार है । ऐसे आपको तथा आशीर्वाद देने में समर्थ ब्राह्मणों को नमस्कार हो ॥६,१३.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १४ – बलासनाशन सूक्त

श्लेष्मा रोग का निवारण

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् ।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥६,१४.१॥

शरीर की हड्डियों और जोड़ों में दर्द पैदा करने वाला, शरीर का बलनाशक श्वास, खाँसी आदि रोग हृदय एवं पूरे शरीर में व्याप्त हो रहा है । हे मन्त्र शक्ते ! आप उसे हमसे दूर कर दें ॥६,१४.१॥

निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा ।
छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥६,१४.२॥

जिस प्रकार कमल नाल को सहज ही उखाड़ दिया जाता है, उसी प्रकार बल-विनाशक कफ के रोगी के क्षय रोग को जड़ से उखाड़ता हूँ । जैसे- पकी हुई ककड़ी का फल

पौधे से अपने आप छूट जाता है, उसी प्रकार रोग होने के (बन्धन) कारण को शरीर से अनायास ही दूर करता हूँ ॥६,१४.२॥

निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा ।
अथो इत इव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥६,१४.३॥

हे बलविनाशक बलास रोग ! जिस प्रकार शीघ्रगामी शुशुक नामक मृग दूर भागता है, उसी प्रकार हे वीर नाशक ! तू हमारे शरीर से निकल कर भाग । जैसे- बीता हुआ वर्ष पुनः वापस नहीं आता, उसी प्रकार हमारे पुत्रादि को नष्ट न करते हुए तू भाग जा (पुनः न आना) ॥६,१४.३॥

सूक्त १५ – शत्रुनिवारण सूक्त

वनस्पतियों में उत्तम पलाश वक्ष का वर्णन

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्मामभिदासति ॥६,१५.१॥

(हे वनस्पते !) आप औषधियों में श्रेष्ठ हैं, अन्य वृक्ष तेरे अनुगामी हैं। जो रोग हम पर आधिपत्य जमाना चाहते हैं, वह हमारे अधीन हो जाएँ ॥६,१५.१॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्मामभिदासति ।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥६,१५.२॥

जिस प्रकार वृक्षों में औषधि- प्रवाह (वृक्ष के अन्य गुणों में) श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बन्धुओं के साथ या अकेले ही जो हमारा अहित करना चाहते हैं, हम उनसे श्रेष्ठ हो जाएँ ॥६,१५.२॥

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः ।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥६,१५.३॥

जिस प्रकार वृक्षों में 'तलाश' नामक वृक्ष है अथवा वृक्षों में आश्रय पाने वाले तत्त्वों में औषधि (रोग नाशक) तथा सोम (पोषक प्रवाह) श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार हम भी उत्तम बनें ॥६,१५.३॥

सूक्त १६ – अक्षिरोगभेषज सूक्त

भक्षण योग्य सरसों का वर्णन

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो ।
आ ते करम्भमद्मसि ॥६,१६.१॥

हे आबय (औषधि विशेष अथवा चन्द्रमा) ! आपके खाने योग्य तथा न खाने योग्य रस उग्र (रोगनाशक) हैं। यह (आपका स्वरूप) दोनों का करंभ (मिश्रण) हे ॥६,१६.१॥

विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।
स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥६,१६.२॥

विहह्ल (चमत्कारी) तथा मदावती (मस्ती पैदा करने वाली) नाम से प्रसिद्ध तेरे पिता और माता हैं । तू जिसने अपने आपको खाद्य बनाया है, उन (माता-पिता) से भिन्न हैं ॥६,१६.२॥

तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत्।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥६,१६.३॥

हे तौविलिके (इस नाम की अथवा उत्पन्न होने वाली औषधि) ! आप हमें शक्ति देकर रोगों का विनाश करें। 'एलब' नाम का यह आँखों का रोग पलायन कर जाए। रोग के कारणसहित बभ्रु और बभ्रुकर्ण नामक रोग शरीर से भाग जाएँ तथा 'निराल' नामक रोग भी निकल जाए ॥६,१६.३॥

अलसालासि पूर्व सिलाञ्जालास्युत्तरा ।
नीलागलसाल ॥६,१६.४॥

हे आलस्य विनाशिनी अलसाला (सस्य मञ्जरी) ! तू प्रथम ग्रहणीय होने से पूर्वा है । हे शलाञ्जला (सस्य मञ्जरी) ! तू अणुओं तक पहुँचने वाली और अन्त में ग्रहण करने के कारण उत्तरा' है । हे नीलागलसाला (सस्य मञ्जरी) ! तुझे मध्य में ग्रहण किया जाता है ॥६,१६.४॥

सूक्त १७ – गर्भदेहण सूक्त

नारी के गर्भ स्थिर रहने की कामना

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥६,१७.१॥

हे स्त्री ! जिस प्रकार यह विशाल पृथ्वी प्राणिमात्र के बीजरूप गर्भ को धारण करती है, उसी प्रकार तेरा गर्भ भी प्रसवकाल तक गर्भ में (दस मास तक) स्थिर हो ॥६,१७.१॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥६,१७.२॥

जिस प्रकार इस विशाल पृथ्वी ने पहाड़- उपत्यकाओं सहित वृक्ष-वनस्पतियों को दृढ़तापूर्वक धारण कर रखा है, उसी तरह गर्भाशय में स्थित तेरा यह गर्भ प्रसव के लिए यथासमय (प्रसवकाल) तक स्थित रहे ॥६,१७.२॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥६,१७.३॥

विशाल पृथ्वी ने जैसे नाना प्रकार से विभक्त, व्यवस्थित, चराचर जगत् को स्वयं में धारण कर रखा है, उसी प्रकार तुम्हारा यह गर्भ यथासमय (प्रसवकाल) तक स्थित रहे ॥६,१७.३॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥६,१७.४॥

जिस प्रकार यह विशाल धरित्री विविध स्वरूपों वाले जगत् को धारण किए हुए है, उसी प्रकार तुम्हारा यह गर्भ प्रसवकाल तक स्थित रहे ॥६,१७.४॥

सूक्त १८ – ईर्ष्याविनाशन सूक्त

ईर्ष्या के विनाश की कामना

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् ।
अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥६,१८.१॥

हे ईष्र्यालु मनुज ! हम तेरी ईर्ष्या (डाह) से होने वाली प्रथम गति एवं उसके बाद की गति को तथा उससे उत्पन्न हृदय को संतप्त करने वाली अग्नि और शोक को सर्वदा के लिए दूर कर देते हैं ॥६,१८.१॥

यथा भूमिर्मृतमना मृतान् मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥६,१८.२॥

जैसे भूमि मेरे मन वाली (संवेदनाहीन) है, मृत व्यक्ति से भी अधिक मृत मन वाली है, उसी प्रकार ईष्र्यालु का मन मर जाता (संवेदना शून्य, क्रूर हो जाता है ॥६,१८.२॥

अदो यत्ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥६,१८.३॥

हे ईर्ष्र्याग्रसित पुरुष ! व्यक्ति को पतन के मार्ग पर ले जाने वाले, हृदय में स्थित ईर्ष्र्याग्रस्त विचारों को, उसी प्रकार बाहर निकालता हूँ, जिस प्रकार शिल्पकार वायु को धौंकनी से बाहर निकालता हैं ॥६,१८.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १९ – पावमान सूक्त

देवों से शुद्धि के लिए प्रार्थना

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥६,१९.१॥

देवता मुझे पवित्र करें, विद्वान् मनुष्य हमारी बुद्धि और कर्म को पवित्र करें। सभी प्राणि-समुदाय हमें पवित्र करें। पवित्र करने वाले देव वायु या सोम भी हमें पवित्र करें ॥६,१९.१॥

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातयह ॥६,१९.२॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप हमें पापमुक्त करके पवित्र करे। कर्म करने के लिए, शक्ति प्राप्त करने के लिए तथा दीर्घजीवन के लिए एवं हर प्रकार से कल्याण के लिए, पवित्र करने वाले देव हमें पवित्र करें ॥६,१९.२॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥६,१९.३॥

हे सबके प्रेरणास्रोत सवितादेव ! आप इस लोक और परलोक के सभी सुखों की प्राप्ति के लिए, अपने विध करने के साधन तेजस् से तथा अपनी प्रेरणा एवं यज्ञ से हमें पवित्र करें ॥६,१९.३॥

सूक्त २० – यक्ष्मनाशन सूक्त

प्रबल पित्त ज्वर से छुटकारे की कामना

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्न् अपायति ।
अन्यमस्मदिछतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥६,२०.१॥

दाहक अग्नि की भांति यह ज्वर शरीर में व्याप्त हो जाता है। उन्मत्त के समान प्रलाप करता हुआ, परलोक गमन कर जाता है। ऐसा प्रबल ज्वर किसी अनियमित व्यक्ति के पास चला जाए। तापरूपी अस्त्र से मारने वाले तथा जीवन दुःखित करने वाले ज्वर को हमारा नमस्कार है ॥६,२०.१॥

नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥६,२०.२॥

रुद्रदेव को नमस्कार, पीड़ा देने वाले ज्वर को नमस्कार, तेजस्वी राजा वरुण, द्युलोक, पृथिवी तथा औषधियों आदि सभी को हमारा नमस्कार है ॥६,२०.२॥

अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥६,२०.३॥

दुःखी करने वाले, सभी स्वरूपों को पीला (तेजहीन) बना देने वाले, उस लाख और भूरे रंग वाले तथा वनों में फैलने वाले ज्वर को नमस्कार हैं ॥६,२०.३॥

सूक्त २१ – केशवर्धनी औषधि सूक्त

धनवती ओषधियों का वर्णन

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥६,२१.१॥

तीनों लोकों में श्रेष्ठ, लौकिक और पारलौकिक कर्मों का सम्यक् फल प्रदान करने वाली, त्वचा के समान भूमि से उत्पन्न व्याधि निवारक इस औषधि को मैं ग्रहण करता हूँ ॥६,२१.१॥

श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् ।
सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥६,२१.२॥

हे हरिद्रा औषधे ! तुम सभी औषधियों में श्रेष्ठ और अन्य बूटियों में सबसे अधिक उत्तम रस, गुण तथा चोर्य से युक्त हो । जिस प्रकार दिन-रात के बीच सोम (शांतिदायक

चन्द्रमा) एवं तेजस्वी सूर्य हैं। सभी देवताओं में जिस प्रकार वरुण सर्वश्रेष्ठ राजा हैं, उसी प्रकार तुम भी श्रेष्ठ हो ॥६,२१.२॥

रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ ।
उत स्थ केशदृम्हणीरथो ह केशवर्धनीः ॥६,२१.३॥

हे सामर्थ्य वाली औषधियों ! आप, सबको आरोग्य प्रदान करती हैं एवं बलदात्री होने के कारण कभी हिंसित नहीं करती हैं, इसलिए आप आरोग्य प्रदान करने की इच्छा करें, केशों को बढ़ाने वाली सिद्ध हों ॥६,२१.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त २२ – भैषज्य सूक्त

आदित्य, रश्मि व मरुत की स्तुति

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥६,२२.१॥

श्रेष्ठ गतिमान् सूर्य-किरणें अपने साथ जल को उठाती हुई सबके आकर्षण के केन्द्र यानरूप सूर्य मण्डल के समीप पहुँचती हैं। वहाँ अन्तरिक्ष के मेघों में स्थित जल को बरसाते हुए पृथ्वी को सिक्त कर देती हैं ॥६,२२.१॥

पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥६,२२.२॥

हे मरुतो ! स्वर्णाभूषणों को हृदय में धारण कर आपके गतिमान होने से रसमय जल और अन्नादि औषधियों को सुख प्राप्त होता है । हे देवो ! जहाँ जल वृष्टि हो, वहाँ शक्तिदाता अन्न एवं उत्तम बुद्धि स्थापित हो ॥६,२२.२॥

उदप्रुतो मरुतस्तामियर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥६,२२.३॥

हे जल को बरसाने वाले मरुतो ! जो वृष्टि, अन्न आदि सभी धान्यों और नीचे के स्थानों को जल से भर देती है, आप उसे प्रेरित करें । वृष्टि के लिए मेघ-गर्जना सबको कम्पायमान करती रहे, जैसे दुखी कन्या (माता-पिता को) कम्पायमान करती है और पत्नी, पति को प्रेरित करती है ॥६,२२.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त २३ – अपभैषज्य सूक्त

जल की प्रशंसा

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वयह ॥६,२३.१॥

हम श्रेष्ठ कर्म करने वाले लोग निरन्तर गतिमान् जल धाराओं में प्रवाहित दिव्य आपः (सृष्टि के मूल सक्रिय तत्त्व) का आवाहन करते हैं ॥६,२३.१॥

ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतयह ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥६,२३.२॥

सर्वत्र व्याप्त, निरन्तर गतिमान् जल धाराएँ क्रियाशक्ति उत्पन्न करके हमें इन (हीनताओं) से मुक्त करें, हम शीघ्र प्रगति करें ॥६,२३.२॥

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥६,२३.३॥

सबके प्रेरक – उत्पादक सविता देवता की प्रेरणा से सब मनुष्य अपने-अपने नियत लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के काम करें । कल्याणकारी औषधियों की वृद्धि एवं हमारे लिए जल कल्याणकारी एवं पाप-क्षयकारी सिद्ध हो ॥६,२३.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त २४- अपांभैषज्य सूक्त

जल का वर्णन

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह सङ्गमः ।
आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥६,२४.१॥

हिमाच्छादित पर्वतों की जल धाराएँ बहती हुई समुद्र में मिलती हैं, ऐसी पापनाशक जल धाराएँ हमारे हृदय के दाह को शान्ति देने वाली औषधियाँ प्रदान करें ॥६,२४.१॥

यन् मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्।
आपस्तत्सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥६,२४.२॥

जो-जो रोग हमारी आँखों , एड़ियों और पैरों के आगे के भागों को व्यथित कर रहे हैं, उन सब दुःखों को वैद्यों का भी उत्तम वैद्य जल हमारे शरीर से निकाल कर बाहर करे ॥६,२४.२॥

सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥६,२४.३॥

आप समुद्र की पत्नियाँ हैं, समुद्र आपका सम्राट् है । हे निरन्तर बहती हुई जल धाराओ ! आप हमें पीड़ा से मुक्त होने वाले रोग का निदान दें, उपचार दें, जिससे हम आपके स्वजन नीरोग होकर अन्नादि बल देने वाली वस्तुओं का उपभोग कर सकें ॥६,२४.३॥

सूक्त २५- मन्याविनाशन सूक्त

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥६,२५.१॥

गले के ऊपरी हिस्से की नसों में जो पचपन प्रकार के गण्डमाला की फंसियाँ व्याप्त हैं, वह इस प्रयोग से इस प्रकार नष्ट हों, जैसे पतिव्रता स्त्री के सामने दोषपूर्ण वचन नष्ट हो जाते हैं ॥६,२५.१॥

सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥६,२५.२॥

जो सतहत्तर प्रकार की पीड़ाएँ गले में होती हैं, वह भी इस प्रयोग से इस प्रकार नष्ट हो जाएँ, जैसे पतिव्रता स्त्री के सामने पापमय वचन नष्ट हो जाते हैं ॥६,२५.२॥

नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।

इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥६,२५.३॥

कन्धे के चारों तरफ जो निन्यान्नबे प्रकार की गण्डमालाएँ हैं, वह इस प्रयोग से उसी प्रकार नष्ट हो जाएँ, जैसे पतिव्रता स्त्री के सामने दोषपूर्ण वचन नष्ट हो जाते हैं ॥६,२५.३॥

सूक्त २६ – पाप्मनाशन सूक्त

पाप्मा की स्तुति

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृदयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् ॥६,२६.१॥

हे पापाभिमानी देव ! हे पाप्मन् ! तुम मुझे वश में करके दुःख देते हो, इसलिए सुखी करो । हे पाप्मन् ! तुम मुझे सरल-निष्कपट रूप में स्थापित करो ॥६,२६.१॥

यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम् ॥६,२६.२॥

हे पाप्मन् ! यदि तुम मुझे नहीं छोड़ते हो, तो हम तुमको व्यावर्तन (चौराहे) पर इस अनुष्ठान से बलपूर्वक छोड़ते हैं। जिससे तुम असद्गामी लोगों के पास चले जाओ ॥६,२६.२॥

अन्यत्रास्मन् न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेषाम तमृछतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥६,२६.३॥

इन्द्र सदृश सहस्रों विचार वाले हे अमरण-धर्मा पाप ! तुम हमसे दूर हो जाओ। जो असद् विचार वाले हमसे द्वेष रखते हों, उन्हें ही नष्ट करो ॥६,२६.३॥

सूक्त २७ – अरिष्टक्षयण सूक्त

यम की पूजा अर्चना

देवाः कपोत इषितो यदिछन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥६,२७.१॥

हे देवो ! पाप देवता द्वारा प्रेरित दूत (कपोत पक्षी), जिस अशुभ सूचक संदेश के द्वारा हमें कष्ट पहुँचाने आया है, हम उस (अशुभ) के निवारण के लिए हव्यादि कर्मों से आपकी पूजा करते हैं। हमारे द्विपद पुत्र-पौत्रादि एवं चतुष्पद गौ, अश्वादिकों के अनिष्ट- निवारण के लिए, कपोत के आने के दोषों की शान्ति हो ॥६,२७.१॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥६,२७.२॥

हे देवताओ ! हमारे घर आया हुआ यह कपोत कल्याणकारी और निष्कलुष सूचक हो, जिससे हमारे घर में कोई अशुभ कार्य न हो । हे विद्वान् अग्निदेव ! हमारे द्वारा समर्पित हव्य को ग्रहण करके, इस कपोत के यहाँआने से होने वाले अनिष्ट या आयुध का निवारण करें ॥६,२७.२॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मान् आष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने । शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत्कपोत ॥६,२७.३॥

पंखों वाला आयुध हमारा विनाश न करे। वह अग्निशाला में अग्नि के पास अपना पैर रखे और हमारी गौओं और मनुष्यों के लिए कल्याणकारी हो । हे देवताओ ! यह कपोत पक्षी हमारा विनाश न करे ॥६,२७.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त २८ – अरिष्टक्षयण सूक्त

यम की प्रशंसा

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात्पथिष्ठः ॥६,२८.१॥

हे देवताओं ! आप मन्त्र के द्वारा, दूर भेजने योग्य कपोत को, दूर भेजें । यह कपोत हमारी अन्नशाला को छोड़कर उड़ जाए। हम कपोत के अशुभ पद-चिह्नों का मार्जन करते हैं एवं अन्न से तृप्त होकर गौओं (या शोधक किरणों) को घुमाते हैं ॥६,२८.१॥

परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमामा दधर्षति ॥६,२८.२॥

इन (शमन प्रयोग करने वालों) ने अग्नि को सब ओर स्थापित किया है, इन्होंने गौओं (या किरणों को) चारों ओर

पहुँचाया हैं, देव शक्तियों ने यश अर्जित किया है, इस प्रकार इन्हें कौन भयभीत कर सकता है? ॥६,२८.२॥

यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥६,२८.३॥

यमदेव अन्य देवों में प्रमुख हैं। यह प्राणियों की मृत्यु के समय की अनुक्रम से गणना करते हुए फल देने वाले हैं, दो पैर वाले मनुष्यों तथा चार पैर वाले पशुओं की मृत्यु के प्रेरक देव यम को नमस्कार है ॥६,२८.३॥

सूक्त २९ – अरिष्टक्षयण सूक्त

यम की स्तुति

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत्।
यद्वा कपोत पदमग्नौ कृणोति ॥६,२९.१॥

दूर दिखने वाले शत्रुओं तक, पक्ष (पंख) वाला आयुध पहुँचे। अशुभ बोलने वाला उल्लू और पैरों को पचनाग्नि के समीप रखने वाला यह अशुभ सूचक कपोत निर्वीर्य हो जाए ॥६,२९.१॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥६,२९.२॥

हे पाप देवता निर्ऋते ! दूतरूप यह कपोत और उलूक, आपके द्वारा भेजे हुए हों अथवा बिना आपके भेजे हुएहों, हमारे घर में आकर आश्रय प्राप्त न कर सकें ॥६,२९.२॥

अवैरहत्यायहदमा पपत्यात्सुवीरताया इदमा ससद्यात्।
पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशान् आभूकं प्रतिचाकशान् ॥६,२९.३॥

हमारे वीरों के लिए, उलूक एवं कपोत के अशुभ चिह्न अहिंसक हों। हमारे वीरों की असफल होकर लौटने की स्थिति न बने । है यम के दूतरूप कपोत ! जिस प्रकार तेरे स्वामी यमदेव के घर के प्राणी तुझे निर्वीर्य देखते हैं, उसी प्रकार हम भी देखें ॥६,२९.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ३० – पापशमन सूक्त

जौ सौभाग्य सूचक शमी का वर्णन

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥६,३०.१॥

सरस्वती नदी के तट के समीप मनुष्यों को देवताओं ने रसयुक्त मधुर 'यव' दिया; तब भूमि में धान्य उपजाने के लिए सुदानी मरुद्गण किसान बने और इन्द्रदेव हल के अधिष्ठाता बने ॥६,३०.१॥

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो यहनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात्त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥६,३०.२॥

हे शमी ! आपका आनन्ददायक रस केश उत्पादक एवं वर्द्धक होता है । जिससे आप पुरुष को हर्षयुक्त करते हैं। आप सैकड़ों शाखायुक्त होकर बढ़े । हम आपको छोड़कर अन्य वृक्षों को काटते हैं ॥६,३०.२॥

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥६,३०.३॥

सौभाग्यकारिणों, बड़े पत्तों वाली, वर्षा के जल से वर्द्धित हे शमी औषधे ! माता जिस प्रकार पुत्रों को सुख देती हैं, उसी प्रकार आप केशों के लिए सुखकारी हों ॥६,३०.३॥

सूक्त ३१ – गौ सूक्त

गौ अर्थात् सूर्य की किरणों का वर्णन

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥६,३१.१॥

यह गो (वृषभ- निरन्तर पोषण देने वाला सूर्य) प्राणियों की माता पृथ्वी को आगे करता (बढ़ाता) है। यह पिता द्युलोक को भी प्रकाश से भर देता है ॥६,३१.१॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः ।
व्यख्यन् महिषः स्वः ॥६,३१.२॥

जो प्राण और अपान का व्यापार करने वाले प्राणी हैं, उनकी देह में सूर्यदेव की प्रभा विचरती हैं । यह महान् सूर्यदेव स्वर्ग और समस्त ऊपर के लोकों में भी प्रकाश फैलाते हैं ॥६,३१.२॥

त्रिंशद्धामा वि राजति वाक्पतङ्गो अशिश्रियत्।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥६,३१.३॥

दिन और रात्रि के अवयवरूप (विभाग) तीस मुहूर्त (२४घण्टे), इन सूर्यदेव की आभा से ही प्रतिक्षण देदीप्यमान रहते हैं। वाणी भी तीव्र गमनशील सूर्यदेव का आश्रय लेकर रहती है ॥६,३१.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ३२ – यातुधानक्षयण सूक्त

अग्नि की स्तुति

अन्तर्दावे जुहुत स्वेतद्यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद्रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥६,३२.१॥

हे ऋत्विजो ! यातुधानों (स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रोगाणु) को नष्ट करने हेतु प्रज्वलित अग्नि में घृतसहित हवि की आहुतियाँ प्रदान करो । हे अग्निदेव ! आप इन उपद्रवी राक्षसों (रोगाणु आदि) को भस्म करके हमारे गृहों को संतप्त होने से बचाएँ ॥६,३२.१॥

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत्पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद्वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत्॥६,३२.२॥

हे पिशाचो ! रुद्रदेव ने तुम्हारी गर्दनें तोड़ दी हैं, वह तुम्हारी पसलियाँ भी तोड़ डालें । हे यातुधानो ! अनन्त वीर्यमयी औषधि ने तुम्हें यमलोक पहुँचा दिया ॥६,३२.२॥

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्
॥६,३२.३॥

हे मित्रावरुण ! हम निर्भयतापूर्वक इस देश में निवास करें। आप अपने तेज से मांस – भक्षक राक्षसों को हम से दूर भगाएँ । इन्हें कोई भूमि तथा आश्रय देने वाला न मिले और वह परस्पर लड़कर नष्ट हो जाएँ ॥६,३२.३॥

सूक्त ३३ – इन्द्रस्तव सूक्त

इंद्र की स्तुति

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना नवं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत्॥६,३३.१॥

हे मनुष्यो ! शत्रुओं के विनाश की प्रेरणा देने वाली, जिन इन्द्रदेव की रञ्जक ज्योति है, उन्हीं इन्द्रदेव के परम सुखदाता सेवनीय तेज का सेवन करो ॥६,३३.१॥

नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः ।
पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥६,३३.२॥

वह दूसरों से सम्माननीय इन्द्रदेव तुम्हारे शत्रुओं का दमन कर देते हैं । जिस वृत्रासुर वध के समय उनका बल अदमनीय था, उसी प्रकार वह आज भी अदमनीय हैं ॥६,३३.२॥

स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम् ।
इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥६,३३.३॥

वह इन्द्रदेव, देवताओं और मनुष्यों आदि के स्वामी हैं तथा सब प्रकारसे श्रेष्ठ हैं। वह हम सबको पीत वर्ण की आभावाला धन (स्वर्ण) प्रदान करें ॥६,३३.३॥

सूक्त ३४ – शत्रुनाशन सूक्त

अग्नि की स्तुति

प्राग्नयह वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥६,३४.१॥

हे स्तोताओ ! उन अग्निदेव की स्तुति करने वाली वाणी उच्चारित करो, जो (अग्निदेव) यातुधानों का विनाश करते हैं और इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। वह अग्निदेव हमें राक्षस-पिशाचादि द्वेष करने वालों से बचाएँ ॥६,३४.१॥

यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥६,३४.२॥

जो अग्निदेव, यातुधानों को अपने तीक्ष्ण तेज से विनष्ट कर देते हैं। वह अग्निदेव हमको शत्रुओं से बचाएँ ॥६,३४.२॥

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥६,३४.३॥

जो अग्निदेव, जलरहित मरुस्थल की रेत को अतितप्त करते हुए दमकते हैं । वह (अग्निदेव) राक्षस, पिशाच और शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥६,३४.३॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥६,३४.४॥

जो अग्निदेव समस्त भुवनों में, विभिन्न रूपों में, अनेक प्रकार से देखते हैं एवं सूर्यरूप से प्रकाश देते हैं, वह अग्निदेव राक्षस – पिशाचादि शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥६,३४.४॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥६,३४.५॥

जो अग्निदेव (विद्युत् या सूर्यरूप में) इस पृथ्वी से परे अन्तरिक्ष में प्रकट हुए हैं। वह देव, राक्षस, पिशाचादि शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥६,३४.५॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ३५ – वैश्वानर सूक्त

वैश्वानर अग्नि की स्तुति

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥६,३५.१॥

समस्त मनुष्यों के हितैषी अग्निदेव हमारी रक्षा करने के लिए दूर देश से आएँ एवं सुन्दर स्तुतियों को सुनें ॥६,३५.१॥

वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप ।
अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥६,३५.२॥

वह समस्त मनुष्यों के हितैषी, वैश्वानर अग्निदेव हमारे स्तुतिरूप उक्थों (स्तोत्रों) से प्रसन्न होकर हमारे इस यज्ञ में पधारें ॥६,३५.२॥

वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्।
ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत्॥६,३५.३॥

वैश्वानर अग्निदेव ने, उक्थों (मंत्रों) को समर्थ बनाया तथा यश एवं अन्न प्राप्ति की रीति बताते हुए स्वर्ग सुख की प्राप्ति करा दी ॥६,३५.३॥

सूक्त ३६ – वैश्वानर सूक्त

वैश्वानर अग्नि की आराधना

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥६,३६.१॥

यज्ञात्मक ज्योति के अधिपति और यज्ञ स्वरूप, सदैव देदीप्यमान रहने वाले वैश्वानर अग्निदेव की हम उपासना करते हुए उनसे श्रेष्ठफल की याचना करते हैं ॥६,३६.१॥

स विश्वा प्रति चाकॢप ऋतूंरुत्सृजते वशी ।
यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥६,३६.२॥

यह वैश्वानर अग्निदेव समस्त प्रजाओं के फल प्रदाता हैं । यह देवगणों को हविष्यान्न प्राप्त कराने वाले एवं सूर्य रूप से वसन्त आदि ऋतुओं का नियमन करने वाले हैं ॥६,३६.२॥

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥६,३६.३॥

उत्तम धामों के स्वामी अग्निदेव हैं। भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् काल की कामनाओं की पूर्ति करने वाले यह अग्निदेव और अधिक दीप्तिमान् हो रहे हैं ॥६,३६.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ३७ – शापनाशन सूक्त

इंद्र की स्तुति

उप प्रागात्सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् ।
शप्तारमन्विछन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥६,३७.१॥

सहस्राक्ष इन्द्रदेव रथारूढ़ होकर हमारे समीप आएँ एवं हमें शाप देने वाले को उसी प्रकार नष्ट करें, जैसे भेड़िया भेड़ को नष्ट करता है ॥६,३७.१॥

परि णो वृङ्ग्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् ।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः ॥६,३७.२॥

हे शपथ ! तू बाधक मत बन, हमको छोड़ दे और जो शत्रु हमें शाप दे रहे हैं, उन्हें उसी तरह भस्म कर दे, जिस प्रकार तड़ित् वृक्ष को भस्म कर देती है ॥६,३७.२॥

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥६,३७.३॥

हम शाप नहीं देते हैं, लेकिन यदि कोई हमें शाप दे, कठोर भाषा बोले, तो ऐसे शत्रु को हम वैसे ही मृत्यु के समक्ष फेंकते हैं, जैसे कुत्ते के आगे भक्षण हेतु रोटी डालते हैं ॥६,३७.३॥

सूक्त ३८ – वर्चस्य सूक्त

तेजस्वरूपा देवी की स्तुति

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥६,३८.१॥

मृगेन्द्र में, व्याघ्र में तथा सर्प में जो तेजस् है; अग्निदेव में, ब्राह्मण और सूर्यदेव में जो तेजस् है तथा जिस तेजस् से इन्द्रदेव प्रकट हुए हैं, वहीं वर्धमान इच्छित तेजस् हमको भी प्राप्त हो ॥६,३८.१॥

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥६,३८.२॥

जो तेजस् हाथी और बाघ में है तथा जो स्वर्ण में, जल में, गौओं और मनुष्यों में रहता है, जिसने इन्द्रदेव को उत्पन्न किया है, वह दिव्य तेजस् हमारे इच्छित रूप में हमें प्राप्त हो ॥६,३८.२॥

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥६,३८.३॥

आवागमन के साधन रथ के अक्षों में, सेचन-शक्तियुक्त वृषभ में, तीव्रगामी वायु में, वर्षाकारक मेघ में और उसके अधिपति वरुण में जो तेजस् है, जिसने इन्द्रदेव को उत्पन्न किया है ।वह 'त्विषि' दिव्य तेजस् हमें प्राप्त हो ॥६,३८.३॥

राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा सम्विदाना ॥६,३८.४॥

राज्याभिषेक के समय बजने वाली दुन्दुभि में, घोड़ों के तीव्र गमन में, पुरुष के उच्चस्वर में, जो 'विषि' (तेजस्) है एवं

जिसने इन्द्र को उत्पन्न किया है, वह विषि (तेजस्) दिव्यता के साथ हमें प्राप्त हो ॥६,३८.४॥

सूक्त ३९ - वर्चस्य सूक्त

इंद्र की स्तुति

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातयह
॥६,३९.१॥

अपरमित शक्ति वाली, पराभवकारक, बल देने में समर्थ, प्रसारित होने वाली यशोदायिनी हवि बढ़े । हे इन्द्रदेव ! इस बढ़ने वाली हवि से प्रसन्न होकर, आप-हम विदाता यजमानों की श्रेष्ठ प्रगति करें ॥६,३९.१॥

अछा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम
॥६,३९.२॥

समक्ष उपस्थित यशस्वी इन्द्रदेव की हम नमस्कारादि से पूजा एवं सेवा करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप हमें राज्य और यश प्रदान करें ॥६,३९.२॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्य अहमस्मि यशस्तमः ॥६,३९.३॥

इन्द्रदेव एवं अग्निदेव यश की कामना करते हैं। सोमदेव भी यश की कामनासहित उत्पन्न हुए। जैसे यह सब यशस्वी बने, वैसे ही हम भी समस्त मनुष्यादि जीवों में यशस्वी बनें ॥६,३९.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ४० – अभय सूक्त

द्यावा, पृथ्वी व इंद्र की आराधना

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥६,४०.१॥

हे द्यावा-पृथिवि ! हम आपकी कृपा से भयभीत न रहें । अन्तरिक्ष, चन्द्रदेव एवं सूर्यदेव हमें निर्भय बनाएँ। सप्तर्षियों को प्रदत्त हवि हमें अभय प्रदान करे ॥६,४०.१॥

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु ।
अशत्र्विन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥६,४०.२॥

हे सूर्यदेव ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे हम ग्राम में पर्याप्त अन्न प्राप्त करके कुशलपूर्वक रहें । इन्द्रदेव की कृपा से राजा हमसे प्रसन्न रहें । उन्हीं इन्द्रदेव की कृपा से हमें शत्रुओं का भय व्याप्त न हो ॥६,४०.२॥

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥६,४०.३॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रसन्न होकर ऐसी कृपा करें, जिससे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम दिशाओं में हमारा कोई शत्रु न हो । हमसे कोई द्वेष न करे ॥६,४०.३॥

सूक्त ४१ – दीर्घायुप्राप्ति सूक्त

प्राण के अधिष्ठाता देव एवं दिव्यगुणों की प्रशंसा

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तयह ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥६,४१.१॥

मन, चित्त, बुद्धि, मति (स्मृति), श्रुति (श्रवण शक्ति) एवं चक्षुओं की वृद्धि के निमित्त हम आहुतियों द्वारा इन्द्रदेव को प्रसन्न करते हैं ॥६,४१.१॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥६,४१.२॥

अपान, व्यान और बहुत प्रकार से धारण करने वाले प्राण की वृद्धि के लिए हम विस्तृत प्रभावशाली सरस्वती देवीं की हवि द्वारा सेवा करते हैं ॥६,४१.२॥

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या यह तनूपा यह नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यामभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥६,४१.३॥

दिव्य सप्तर्षि हमारे शरीर की रक्षा करें । जो हमारे शरीर में उत्पन्न हुए हैं, वह हमें न त्यागें । वह अमरदेव हम मरणधर्मियों के अनुकूल रहकर हमें श्रेष्ठ और दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥६,४१.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ४२- परस्परचित्तैकीकरण सूक्त

पुरुष के लिए उपदेश

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥६,४२.१॥

धनुर्धारी पुरुष जिस प्रकार धनुष पर चढ़ी प्रत्यञ्चा को उतारता है, उसी तरह हम आपके हृदय से क्रोध को उतारते हैं, ताकि हम परस्पर मित्रवत् रह सकें ॥६,४२.१॥

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥६,४२.२॥

हम एक दूसरे से मन मिलाते हुए, एक मन होकर कार्य करें। इसीलिए हम आपके क्रोध को भारी पत्थर के नीचे फेंकते हैं ॥६,४२.२॥

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥६,४२.३॥

हे क्रुद्ध (देव) ! हम आपके क्रोध को पैर के अग्रभाग एवं एड़ी से दबाते हैं। जिससे आप शान्त होकर हमारे चित्त के अनुकूल बनें और अनियंत्रित रहने की बात न करें ॥६,४२.३॥

सूक्त ४३ – मन्युशमन सूक्त

क्रोध को शांत करना

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥६,४३.१॥

यह जो सामने दर्भ (कुश) खड़ा है, यह स्वयं के एवं अन्य दूसरे के क्रोध को नष्ट करने की शक्तिवाला है। यह स्वभावत: क्रोधी पुरुष एवं कारणवश क्रोध करने वाले के क्रोध को शान्ति करने में समर्थ है ॥६,४३.१॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥६,४३.२॥

बहुत जड़ों वाला, समुद्र (जल की अधिकता) के समीप उत्पन्न होने वाला, पृथ्वी से उगा हुआ यह दर्भ क्रोध को शान्त करने वाला बतलाया गया है ॥६,४३.२॥

वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥६,४३.३॥

हे क्रुद्ध (देव) ! आपके हनु पर क्रोध से उत्पन्न नस की फड़कन को हम शान्त करते हैं एवं मुख-मण्ट्रल पर क्रोध के कारण उत्पन्न चिह्नों को हम शान्त करते हैं। आप क्रोधवश विवश होकर कुछ (अनर्गल) न कहें तथा हमारे चित्त के अनुकूल रहें ॥६,४३.३॥

सूक्त ४४ – रोगनाशन सूक्त

गाय के सींग द्वारा विषाण रोग का इलाज

अस्थाद्द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत्।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद्रोगो अयं तव ॥६,४४.१॥

जिस प्रकार यह ग्रह-नक्षत्रों वाला द्युलोक स्थिर है, यह पृथ्वी सभी प्राणियों की आधार है, यह भी स्थिर है, खड़े-खड़े सोने वाले यह वृक्षं भी ठहरे हैं, उसी तरह यह रोग (रक्तस्राव) ठहर जाए ॥६,४४.१॥

शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥६,४४.२॥

हे रोगिन्! आपके पास जो सैकड़ों औषधियाँ हैं एवं उनके जो हजारों प्रकार के योग हैं, उन सबसे अधिक लाभप्रद

यह औषधि है, जो रोग का शमन करने में विशिष्ट (प्रभावशाली) हैं ॥६,४४.२॥

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि पितृणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ॥६,४४.३॥

रुद्र का मूत्र अमृतरूप रस है एवं यह विषाणका नामक औषधि है। इनके विशेष योगिक प्रयोग से आनेवंशिक 'वात रोग' भी अपने मूल कारण सहित नष्ट हो जाते हैं ॥६,४४.३॥

सूक्त ४५ – दुःष्वप्रनाशन सूक्त

दुःस्वप्न का विनाश

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामयह वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥६,४५.१॥

हे पापासक्त मन ! तू अशोभन विचार वाला है. इसलिए हम तुझे नहीं चाहते । तू हमसे दूर हट जा और वृक्ष वाले वनों में विचरण कर । मेरा मन घर-परिवार एवं गौओं में उचित भाव से लगा रहे ॥६,४५.१॥

अवशसा निःशसा यत्पराशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥६,४५.२॥

निर्दयतापूर्वक निकट या दूर से की गई हिंसा के पाप एवं जागते अथवा सोते में किए गए जो पाप हैं, उन सब दुःस्वप्नों एवं दुष्कर्मों को अग्निदेव हमसे दूर करें ॥६,४५.२॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात्पात्वंहसः ॥६,४५.३॥

हे ब्रह्मणस्पते इन्द्रदेव ! पापों के कारण हम जिन दुःस्वप्नों से पीड़ित हैं । उन पापों से, आंगिरस मंत्रों से सम्बन्धित ज्ञानी वरुणदेव, हमें बचाएँ ॥६,४५.३॥

सूक्त ४६ – दुष्वप्नप्रनाशन सूक्त

दुःस्वप्न का विनाश

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पितारररुर्नामासि ॥६,४६.१॥

हे स्वप्न ! तू न जीवित है और न मृत है । जाग्रत् अवस्था में हुए अनुभवों से पैदा हुई वासनाओं के गर्भ में तू सदा रहता है । वरुणानी तेरी माता एवं यम तेरा पिता है। तू "अररु' नाम वाला है ॥६,४६.१॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि ॥६,४६.२॥

हे स्वप्न के अभिमानीदेव ! आपकी उत्पत्ति का हमें ज्ञान है । आप वरुणानी के पुत्र एवं यम के कार्यों के साधक हैं ।

हम आपको ठीक से जानते हैं । आप दुःस्वप्नों के भय से हमारी रक्षा करें ॥६,४६.२॥

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥६,४६.३॥

जैसे गाय के दूषित खुर आदि अंगों को छेदित कर दूषणमुक्त करते हैं, जैसे ऋणग्रस्त व्यक्ति धन देकर ऋण मुक्त हो जाता है, वैसे दुःस्वप्नों से होने वाले भय को हम अपने से दूर करते हैं एवं शत्रुओं की ओर भेजते हैं ॥६,४६.३॥

सूक्त ४७ – दीर्घायुप्राप्ति सूक्त

अग्नि की स्तुति

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद्विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥६,४७.१॥

जो विश्व कर्ता, हितैषी एवं शान्तिदाता हैं, ऐसे हे अग्निदेव ! आप प्रात: सेवन के यज्ञ में हमारी रक्षा करें । वह हमें यज्ञ के फल रूप-धन प्रदान करें एवं उनकी कृपा से हम अन्न एवं पुत्र, पौत्रादि सहित दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥६,४७.१॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मान् अस्मिन् द्वितीयह सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥६,४७.२॥

इन्द्रदेव अपने सहयोगी मरुद्गणों सहित द्वितीय सवन में हमें न त्यागें। वह हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर शतायु प्रदान करने की कृपा करें ॥६,४७.२॥

इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन यह चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥६,४७.३॥

जिन्होंने सोमपान के लिए चमस नामक पात्र का निर्माण किया था, वह आंगिरस पुत्र ऋभु सुधन्वा रथ एवं चमस निर्माण कर देवत्व प्राप्त करने में सफल हुए थे। यह तृतीय सवन ऋभुओं का है, वह उत्तम फल हेतु हमें सुमति या सिद्धि प्रदान करें ॥६,४७.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ४८ – स्वस्तिवाचन सूक्त

सवन नामक यज्ञ का उल्लेख

श्येनोऽसि गायत्रछन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योद्दचि स्वाहा ॥६,४८१॥

हे यज्ञदेव ! आप बाज़ पक्षी के समान तीव्र गति वाले तथा गायत्रींच्छन्द्रा हैं । हम आपको धारण करते हैं। आप हमें यज्ञ के अन्तिम चरण तक पहुँचा दें । हम आपके निमित्त 'स्वाहा' प्रयोग करते हैं ॥६,४८.१॥

ऋभुरसि जगछन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योद्दचि स्वाहा ॥६,४८.२॥

हे यज्ञदेव ! आप जगती छन्द प्रधान होने से ऋभु कहलाते हैं। आपको हम (सहारे के लिए) दगडू म्वरूप ग्रहण करते

हैं। आप हमें यज्ञ की श्रेष्ठ समापन ऋचा तक पहुँचाएँ । आपके निमित्त यह स्वाहाकार हैं ॥६,४८.२॥

वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥६,४८.३॥

हे यज्ञदेव ! आप त्रिष्टुप् छन्द वाले वर्षणशील-इन्द्ररूप हैं । हम आपको प्रारम्भ करते हैं। आप हमें यज्ञ की अन्तिम उत्तम चा तक पहुँचाएँ । यह स्वाहाकार आपके निमित्त है ॥६,४८.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ४९ – अग्निस्तवन सूक्त

अग्नि की स्तुति

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥६,४९.१॥

हे अग्निदेव ! आपकी काया की क्रूरता को कोई सहन नहीं कर सकता। जैसे गौएँ अपने ही उत्पन्न किए जरायु की झिल्ली (जेर) को उदरस्थ कर लेती हैं, वैसे ही अग्नदेव अपने द्वारा उत्पन्न पदार्थों को खा जाते हैं ॥६,४९.१॥

मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्न् अंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥६,४९.२॥

हे अग्निदेव ! आप मेष (मेढ़ी) की तरह एकत्रित होते और फेलते हैं और वनों में (दावाग्निरूप में) नृणा का भक्षण

करते हैं । (शवाग्निरूप में) अपने शीर्ष (ज्वाला) से सिरों तथा रूप (तेजस्) से रूपों को दबाते हुए बभ्रुवर्ण वाले मुख से सोमलता आदि का भक्षण करते हैं ॥६,४९.२॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन् नियन्ति उपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥६,४९.३॥

हैं अग्ने !आपकी श्येनपक्षी के समान शीघ्रगामी ज्वालाएँ ध्वन करती हैं एवं कृष्णमृग के समान गति करती हुई नृत्य करती हैं ।यह ज्वालाएँ धूम्र निर्माण करके मेघ बनाती हैं और जल को संसार के निमित्त धारण करती हैं ॥६,४९.३॥

सूक्त ५० – अभययाचना सूक्त

अश्विनीकुमारों की स्तुति

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान् नेददान् अपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥६,५०.१॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हिंसक चूहों का नाश कर दें । आप इनके सिर को काट दें, हड्डी -पसली चूर्ण कर दें । आप इन चूहों के मुख बन्द करके हमारी फसलों, धान्य आदि की सुरक्षा करें ॥६,५०.१॥

तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवान् अहिंसन्तो अपोदित ॥६,५०.२॥

हे हिंसा करने वाले चूहे और पतङ्गो ! ब्रह्म जैसी भयंकर, अश्विनीकुमारों के निमित्त दी जा रहीं यह आहुति, तुम्हें नष्ट करने के हेतु ही है ।अत: आहुति अर्पित करने के पूर्व ही तुम हमारे यवान्न आदि को छोड़कर भाग जाओ॥ ॥६,५०.२॥

तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा यह के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ॥६,५०.३॥

हे चूहों एवं गतङ्गों (कीटों) आदि के स्वामिन् ! आप हमारी कथन सुनें । विभिन्न ढंग से खाने वाले, जंगल या ग्राम में रहने वाले, (सब उपद्रवियों) को इस प्रयोग के द्वारा हम नष्ट करते हैं ॥६,५०.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ५१ – एनोनाशन सूक्त

वरुण देव की स्तुति

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युजः सखा ॥६,५१.१॥

वायु द्वारा पवित्र हुआ सोमरस मुख द्वारा सेवन करने पर अति तीव्रगति से प्रत्येक शरीर में, नाभि तक पहुँच जाता हैं । वह सोम इन्द्र का मित्र है ॥६,५१.१॥

आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥६,५१.२॥

मातृवत् पोषक जल हमें पावन बनाए । घृतरूपी जल हमारी अशुद्धता का निवारण करे । जल की दिव्यता अपने दिव्य स्रोत से सभी पापों का शोधन करे। जल से शुद्ध और पवित्र बनकर हम ऊर्ध्वगामी हों ॥६,५१.२॥

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत्तव धर्म युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः
॥६,५१.३॥

हे उषे !आप स्तोताओं को धन के लिए एवं हमें सत्यभाषण के लिए प्रेरित करती हैं। आप अन्धकार का नाश करती हैं। हमें धन प्रदान करने के लिए आप स्थिरमति हों । कल्याणकारी साधनों द्वारा हमारा पालन करें ॥६,५१.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ५२ – भैषज्य सूक्त

सूर्य देव की स्तुति

उत्सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥१॥

पिशाचादि, रात्रि के समय अँधेरे में उपद्रव करते हैं, उन्हें समाप्त कर देने के लिए सूर्यदेव उदयाचल-शिखर पर सबके समक्ष अन्तरिक्ष में प्रकट हो रहे हैं। हमें न दिखने वाले यातुधानों को भी वह देव अपनी सामर्थ्य से विनष्ट कर दें ॥६,५२.१॥

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
न्यूर्मयो नदीनं न्यदृष्टा अलिप्सत ॥२॥

सूर्यदेव के प्रकट होने से अन्धकार में छिपी नदियों की लहरें एवं प्रवाह अब स्पष्ट दिखने लगे हैं। जंगली हिंसक

पशु भी जंगलों में बैठ गए तथा हमारी गौएँ अब निर्भय होकर गोशाला में बैठ गई हैं ॥६,५२.२॥

आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।
आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत्॥३॥

दीर्घ आयु प्रदान करने वाली एवं रोग नष्ट करने में समर्थ महर्षि कण्व द्वारा निर्दिष्ट (चित्ति-प्रायश्चित्त) औषधि हमने प्राप्त कर ली है। यह औषधि अदृश्य जीवाणुओं को कारण सहित नष्ट करके रोग से हमें पूर्णत: मुक्त करे ॥६,५२.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ५३ – सर्वतोरक्षण सूक्त

पृथ्वी आदि की स्तुति

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥६,५३.१॥

द्यावा-पृथिवी हमें मनोवांछित फल प्रदान करें । सूर्यदेव धन, वस्त्रादि प्रदान करते हुए दक्षिण दिशा से हमारी रक्षा करें । पितर सम्बन्धी स्वधा के अभिमानी देवता कृपा करके हमें अन्नादि प्रदान करें। अग्निदेव, सवितादेव,वायुदेव, भगदेव एवं सोमदेव आदि भी हमारे अनुकूल रहें ॥६,५३.१॥

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।

वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥६,५३.२॥

जीवन का आधार 'प्राण' हमें पुनः प्राप्त हो, जीवन में पुनः प्राप्त हो, आँख और प्राण हमें फिर से प्राप्त हों। हे सर्वहितैषी, अदम्य नेतृत्वक्षमता युक्त अग्निदेव !आप हमारे शरीर में स्थित रहकर रोगादि पापों को नष्ट करें ॥६,५३.२॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विरिष्टम् ॥६,५३.३॥

तेजस् तथा पयस् से हमारे शरीर के अंग-अवयव कान्तियुक्त हों एवं मन कल्याणकारी हो। त्वष्टादेव अपने ही हाथों से रोगपीड़ित काया को शोधित करके और अधिक श्रेष्ठ, स्वस्थ एवं कान्तियुक्त बनाएँ ॥६,५३.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ५४ – अमित्रदम्भन सूक्त

इंद्र, अग्नि और सोम की स्तुति

इदं तद्युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टयह ।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥६,५३.१॥

हम इस (व्यक्ति) को आपके साथ संयुक्त करते हैं। हे देव ! आप प्रसन्न होकर इसके बल, धन एवं अन्य महत्त्वपूर्ण सम्पदा की उसी प्रकार वृद्धि करें, जिस प्रकार वर्षा का जल घास को बढ़ाता है ॥६,५३.१॥

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् ।
इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥६,५३.२॥

हे अग्निदेव ! यजमान को श्रेष्ठ फल प्राप्त हो, इस निमित्त हम यह उत्तम कर्म (यज्ञादि) करते हैं । हे सोमदेव ! इस यजमान को पुन: बल एवं धन प्रदान करें ॥६,५३.२॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्मामभिदासति ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥६,५३.३॥

हे इन्द्रदेव ! आप उन शत्रुओं का संहार करें, जो हिंसक हैं। हे इन्द्रदेव ! आप स्वगोत्र या अन्य गोत्र वाले उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को सोम का अभिषव करने वाले इस यजमान के वश में करें ॥६,५३.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ५५ – सौमनस्य सूक्त

छह ऋतुओं के अधिष्ठाता देवों की प्रशंसा

यह पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि दत्तेह सर्वे ॥६,५५.१॥

हे देवताओ ! आप हमें वह (देवयान) मार्ग दिखाएँ, जिस मार्ग से देवता गण जाते हैं और जो द्यावा-पृथिवी के मध्य स्थित है ॥६,५५.१॥

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद्वर्षाः स्विते नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद्वः शरणे स्याम ॥६,५५.२॥

ग्रीष्मादि ऋतुओं के अधिष्ठाता देवगण हमें उत्तम रीति से प्राप्त होने वाले धन से सम्पन्न करें । जिस प्रकार हम गृह के आश्रय में निर्भय होकर सुखपूर्वक रहते हैं, उसी प्रकार

आपके आश्रित रहकर गौ, पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर सुखपूर्वक रहें ॥६,५५.२॥

इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन् नमः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौ मनसे स्याम ॥६,५५.३॥

हे मनुष्यो ! इदावत्सर, परिवत्सर और सम्वत्सर के प्रति अनेकों प्रकार से नमस्कारों द्वारा उन्हें प्रसन्न करो। इदावत्सरादि की कृपा-अनुग्रह से यज्ञादि करने की सद्बुद्धि मिले एवं उसके सुफलों को भी हम प्राप्त करें ॥६,५५.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ५६ – सर्परक्षण सूक्त

विश्वे देव और रुद्र की स्तुति

मा नो देवा अहिर्वधीत्सतोकान्त्सहपुरुषान् ।
सम्यतं न वि ष्परद्व्यात्तं न सं यमन् नमो देवजनेभ्यः ।

सर्प हमारी एवं हमारे पुत्र-पौत्रादि की हिंसा न कर सकें। सर्प का बन्द मुख बन्द रहे एवं खुला मुख खुला ही रह जाए, (उस उद्देश्यपूर्ति में सहायक) ऐसे देवताओं को नमस्कार है ॥६,५६.१॥

नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजयह ।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥२॥

काले वर्ण वाले सर्पराज को नमस्कार, तिरछी लकीरों वाले और बभ्रु वर्ण वाले 'स्वज' नामक सर्पों को नमस्कार एवं इनके नियामक देवों को नमस्कार है ॥६,५६.२॥

सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू ।
सं ते जिह्वया जिह्वां सं वास्नाह आस्यम् ॥३॥

तेरी ऊपर एवं नीचे की दन्त-पंक्तियों को आपस में मिलाता हूँ । तेरी ठोढ़ी के ऊपर तथा नीचे के भागों को सीता हूँ। दोनों जीभों को सटाता हूँ । अनेक फन एक साथ बाँधता हूँ ॥६,५६.३॥

सूक्त ५७ – जलचिकित्सा सूक्त

रोग की औषधि का वर्णन

इदमिद्वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।
यहनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत्॥६,५७.१॥

निश्चितरूप से यह औषधि हैं, यह रुद्रदेव की औषधि हैं । इसका प्रयोग, एक दण्ड (डण्डे) के माध्यम से अनेक शल्य वाले बाण के व्रण को दूर करने (ठीक करने) में किया जाता है ॥६,५७.१॥

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥६,५७.२॥

(हे परिचारको !) आप (औषधियुक्त या मंत्र सिद्ध या शुद्ध) जल से (रोगी या रोगयुक्त अंगों को पूरी तरह से या आंशिकरूप से सिंचित करें (धोएँ या प्रभावित करें) । यह

रोग नष्ट करने वाली उग्र औषधि है । हे रुद्रदेव !आपकी इस औषधि से हमें सुख प्राप्त हो ॥६,५७.२॥

शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत्।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥६,५७.३॥

हे देव ! हमसे रोगजनित दुःखादि दूर रहें । हमारे पशु एवं प्रजा रोग – मुक्त रहें । रोग के मूलभूत कारण 'पापों का नाश हो । समस्त जगत् के स्थावर जंगम प्राणियों एवं कर्मों की रोगनाशक शक्ति का हमें ज्ञान हो ॥६,५७.३॥

सूक्त ५८ – यशःप्राप्ति सूक्त

इंद्र, सविता, अग्नि, सोम आदि की प्रशंसा

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥६,५८.१॥

धनवान् इन्द्रदेव, द्यावा-पृथिवी एवं सवितादेव हमें यश प्रदान करें । हम दक्षिणा प्रदान करने वालों के प्रिय हो जाएँ ॥६,५८.१॥

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥६,५८.२॥

जैसे आकाश से पृथ्वी पर जल-वर्षा करने से इन्द्रदेव यशस्वी हैं, जल औषधियों में यशस्वी है । उसी प्रकार सत्र देवताओं एवं मनुष्यों में हम यश को प्राप्त करें ॥६,५८.२॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥६,५८.३॥

इन्द्रदेव, अग्निदेव एव' सोमदेव आदि जैसे यशस्वी हुए हैं, उसी प्रकार बल चाहने वाले हम सब प्राणियों में यशस्वी बनें ॥६,५८.३॥

सूक्त ५९ – औषधि सूक्त

सहदेवी नामक औषधि का वर्णन

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यछ चतुष्पदे ॥६,५९.१॥

हे अरुन्धती – दिव्य औषधे ! आप बैलों को, गौओं को, अन्य चार पाँव वाले पशुओं को एवं पक्षियों को सुख प्रदान करें ॥६,५९.१॥

शर्म यछत्वोषधिः सह देवीररुन्धती ।
करत्पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्मामुत पूरुषान् ॥६,५९.२॥

यह (सहदेवी) औषधि हमें सुख प्रदान कर हमारे गोत्र को दुग्ध – सम्पन्न बनाए एवं हमारे पुत्र-पौत्रादि को रोग मुक्त करे ॥६,५९.२॥

विश्वरूपां सुभगामछावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥६,५९.३॥

अनेक रूपों वाली, सौभाग्यशालिनी एवं जीवनदायिनी आप रुद्र द्वारा फेंके गए शस्त्र अर्थात् रोगों से हमारे पशुओं को कृपा करके बचाएँ ॥६,५९.३॥

सूक्त ६० – पतिलाभ सूक्त

अर्यमा देव की स्तुति

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद्विषितस्तुपः ।
अस्या इछन्न् अग्रुवै पतिमुत जायामजानयह ॥६,६०.१॥

प्रशंसनीय सूर्यदेव पूर्व दिशा से उदित हो रहे हैं। वह स्त्रीरहित पुरुष को स्त्री एवं कन्या को पति प्राप्त कराने की इच्छा से उदीयमान हो रहे हैं ॥६,६०.१॥

अश्रमदियमर्यमन्न् अन्यासां समनं यती ।
अङ्गो न्वर्यमन्न् अस्या अन्याः समनमायति ॥६,६०.२॥

हे अर्यमन् (सूर्यदेव) ! यह पति की कामना वाली कन्याएँ अब तक पति न मिलने के कारण खिन्न हो रही हैं । हे अर्यमन् ! अन्य कन्याएँ भी इनके प्रति शान्ति कर्म करने में संलग्न हैं ॥६,६०.२॥

धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥६,६०.३॥

समस्त विश्व के धारणकर्ता ने पृथ्वी, द्युलोक और सविता को अपने-अपने स्थान में धारण किया। वह धातादेव हीं इन पति- अभिलाषिणी कन्याओं को इच्छित पति प्रदान करने की कृपा करें ॥६,६०.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ६१ – विश्वस्रष्टा सूक्त

जल के अधिष्ठाता देव की स्तुति

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात्॥६,६१.१॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव ने सुखदायक तेजस् सब ओर भर दिया है । जल के अधिष्ठातादेव मधुर जल प्रदान करें। तपः से उत्पन्न देवता हमें इष्ट फल प्रदान करें तथा सवितादेव हमारे लिए विस्तृत हों ॥६,६१.१॥

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥६,६१.२॥

(सूर्य या रुद्रदेव की ओर से कथन) मैंने द्युलोक एवं पृथ्वी को अलग किया हैं । वसन्त आदि छह ऋतुओं और

(संसपहस्पति नामक अधिमास रूप) सातवीं ऋतु को मैंने ही बनाया है। मानवी (सत्यासत्य) एवं दैवी वाणी का वक्ता मैं ही हूँ ॥६,६१.२॥

अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्वमनृतं यद्वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥६,६१.३॥

पृथ्वी, स्वर्ग, गंगादि सात नदियों एवं सात समुद्रों का उत्पादक मैं हूँ। मैं ही सत्यासत्य का वक्ता तथा मित्र, अग्नि और सोम को एक साथ संयुक्त करता हूँ ॥६,६१.३॥

सूक्त ६२ – पांवमान सूक्त

वैश्वानर अग्नि की स्तुति

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञियह न पुनीताम्
॥६,६२.१॥

समस्त मनुष्यों में व्याप्त अग्निदेव अपनी किरणों द्वारा वायुदेव प्राण द्वारा, जल अपने रसों से तथा रस एवं जलतत्त्व धारण करने वाली द्यावा-पृथिवी अपने पोषक रस से हमें पवित्र बनाएँ ॥६,६२.१॥

वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीनाम्
॥६,६२.२॥

हे मनुष्यो ! वैश्वानर सम्बन्धी सत्य स्तुति प्रारम्भ करो। जिस वाणी के शरीर के पृष्ठ भाग विस्तृत हैं, उस वाणी से (स्तुति से) वैश्वानर अग्निदेव प्रसन्न होकर धन प्रदान करें ॥६,६२.२॥

वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥६,६२.३॥

शुद्ध पवित्र होकर तथा दूसरों को पवित्र करते हुए वैश्वानर अग्निदेव की स्तुति करें । अन्न से हृष्ट-पुष्ट रहते हुए चिरकाल तक सूर्यदेव का दर्शन करें अर्थात् स्वस्थ रहते हुए दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥६,६२.३॥

सूक्त ६३ – वर्चोबलप्राप्ति सूक्त

अनिष्टकारिणी देवी निर्ऋति का वर्णन

यत्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्।
तत्ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥६,६३.१॥

(हे पुरुष !) देवी निति (अविद्या) ने आकर्षक रूप से मोहित कर तेरे गले में, जो बन्धन बाँध रखा है, मैं आयु, बल एवं तेजस्विता के लिए उस पाप रूप रस्सी से तुझे मुक्त करता हूँ। तुम हर्षदायी अन्न ग्रहण करो ॥६,६३.१॥

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित्त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥६,६३.२॥

हे निते ! आपको नमस्कार है, आप लौह- बन्धन से हमें मुक्त करें । यम ने तुम्हें पुन: मेरे अधीन कर दिया है। उन यमदेव के निमित्त नमस्कार है ॥६,६३.२॥

अयस्मयह द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयहमम् ॥६,६३.३॥

हे नित्र ते !जब आप पुरुष को लौह- बन्धन से बाँधती हैं, तब मृत्यु के ज्वर आदि रूप दुःखों के सहस्रों पाशों से वह बँध जाता है ।अपने अधिष्ठाता देव यम एवं पितरों की सहमति से इसे आनन्दमय स्वर्ग में पहुँचा दें ॥६,६३.३॥

संसमिद्युवसे वृषन्न् अग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥६,६३.४॥

हे इच्छित कामनाओं के पूरक अग्निदेव ! आप यज्ञ वेदी पर देदीप्यमान हों । आप सब प्रकार के धन के स्वामी हैं, अत: प्रसन्न होकर हमें धन प्रदान करें ॥६,६३.४॥

सूक्त ६४ – सांमनस्य सूक्त

सोमनस्य के इच्छुक जनों को उपदेश

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सम्जानाना उपासते ॥६,६४.१॥

(हे साधको !) जिस प्रकार पूर्व समय से ही देवगण संयुक्त होकर अपने भागों (सौंपे गए हव्य-दायित्वों) को ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार तुम समान रूप से (सहयोगपूर्वक) ज्ञान प्राप्त करो, परस्पर मिलकर (संगठित होकर) रहो तथा तुम्हारे मन संयुक्त होकर अपना प्रभाव प्रकट करें ॥६,६४.१॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥६,६४.२॥

हे स्तोताओ ! आप सभी के विचार तन्त्र (मन, बुद्धि, चित्त) तथा व्रत- सिद्धान्त समान हों। मैं आपके जीवन को एक ही मन्त्र से अभिमंत्रित (सुसंस्कृत) करता हूँ और एक समान आहुति प्रदान करके यज्ञमय बनाता हूँ ॥६,६४.२॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति ॥६,६४.३॥

हे स्तोताओ (मनुष्यो) ! तुम्हारे हृदय (भावनाएँ) एक समान हों, तुम्हारे मन (विचार) एक जैसे हों, संकल्प (कार्य) एक जैसे हों; ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य पूर्ण कर सको ॥६,६४.३॥

सूक्त ६५ – शत्रुनाशन सूक्त

इंद्र की स्तुति

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा ।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि ॥६,६५.१॥

(शत्रु के) क्रोध एवं शस्त्रास्त्र दूर हों । शत्रुओं की भुजाएँ अशक्त एवं मन साहसहीन हों । हे दूर से ही शर-संधान में निपुण देव ! आप उन शत्रुओं के बल को पराङ्मुख करके नष्ट करें तथा उनके धन हमें प्रदान करें ॥६,६५.१॥

निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहून् अनेन हविषाऽहम् ॥६,६५.२॥

हे देवताओ ! आप असुरों की भुजाओं की सामर्थ्य को क्षण करने के लिए जिन बाणों का प्रयोग करते हैं। उसी से

आहुति के द्वारा हम शत्रुओं की भुजाओं को काटते हैं ॥६,६५.२॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥६,६५.३॥

प्राचीनकाल में जिन इन्द्रदेव ने असुरों को बाहुबल से हीन कर दिया था, उन्हीं की कृपा – सहायता से हमारे पराक्रमी वीर योद्धा शत्रुओं को जीतें ॥६,६५.३॥

सूक्त ६६ – शत्रुनाशन सूक्त

इंद्र की स्तुति

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्न् अस्तु यह
सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान्।
समर्पयहन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः
॥६,६६.१॥

हे इन्द्रदेव ! हमें पर आक्रमण करने वाले शत्रुओं का भुजबल क्षीण हो । जो शत्रु सैन्य सहित हमसे संग्राम करने के लिए आते हैं, आप उन्हें अपने घोर संहारक (वज्र) से नष्ट करें और जो विशेष घात करने वाले हों, वह वीर भी विद्ध होकर भाग जाएँ ॥६,६६.१॥

आतन्वाना आयछन्तोऽस्यन्तो यह च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत्॥६,६६.२॥

हे शत्रुओ ! धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाए हुए हम पर बाण बरसाने वाले एवं दौड़कर आने वाले तुम्हें इन्द्रदेव पराजित करके मार डालें ॥६,६६.२॥

निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥६,६६.३॥

हमारे शत्रुओं का भुजबल समाप्त हो जाए। उनके अङ्ग शक्तिहीन हो जाएँ । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से शत्रुओं की सम्पत्ति हम प्राप्त करें ॥६,६६.३॥

सूक्त ६७ – शत्रुनाशन सूक्त

इंद्र की स्तुति

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥६,६७.१॥

हे इन्द्र और पूषा देवो ! शत्रुसेना अतिमोहवश उचित निर्णय न ले सके। आप उन शत्रुओं के मार्गों को अवरुद्ध कर दें ॥६,६७.१॥

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः ।
तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥६,६७.२॥

हे शत्रुओं ! इन्द्रदेव तुम्हारे प्रधान वीरों का संहार कर दें और तुम फन कटे सर्प की तरह, तेजहीन, ज्ञान शून्य हुए व्यर्थ ही संग्राम स्थान में भटकते रहो ॥६,६७.२॥

ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्य भियं कृधि ।
पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ॥६,६७.३॥

हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव ! आप हमारे इन वीरों को काले मृगचर्म (कवचरूप में) पहना दें और शत्रुओं में भय उत्पन्न करें, जिससे पराजित होकर भागे हुए उन शत्रुओं के धनी, गौएँ आदि हमें प्राप्त हो जाएँ॥ ॥६,६७.३॥

सूक्त ६८ – वपन सूक्त

सविता देव व माता अदिति की प्रशंसा

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥६,६८.१॥

सर्वप्रेरक सवितादेव मुण्डन करने वाले छुरे सहित आए हैं। हे वायुदेव ! आप भी सिर को गीला करने के निमित्त उष्ण जल सहित आएँ। रुद्र एवं आदित्यगण एकचित्त होकर बालक के सिर को गीला करें । हे ज्ञानवानो !आप सोम के केशों का मुण्डन करें ॥६,६८.१॥

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥६,६८.२॥

अदिति माता इसके बालों का वपन करें, जलदेव अपने तेजस् से बालों को गीला करे । दीर्घायु और दर्शन शक्ति के लिए प्रजापति इसकी चिकित्सा करें ॥६,६८.२॥

यहनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमान् अश्ववान् अयमस्तु प्रजावान्
॥६,६८.३॥

ज्ञानी सवितादेव ने राजा सोम का जिस उस्तरे से मुण्डन किया था। हे ब्राह्मणो ! ऐसे छुरे (उस्तरे) से आप इसके बालों का मुण्डन करें । इस श्रेष्ठ संस्कार के द्वारा यह गौएँ, घोड़े, पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध हो ॥६,६८.३॥

सूक्त ६९ – वर्चस् प्राप्ति सूक्त

अश्विनीकुमारों की स्तुति

गिरावरगराटेषु हिरन्ये गोषु यद्यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन् मयि ॥६,६९.१॥

हिमवान् पर्वत में, रथारूढ़ वीरों के जयघोषों में, स्वर्ण तथा गौओं के दुग्ध प्रदान करने में जो यश हैं तथा पर्जन्य धारा और अन्न के मधुर रस में जो मधुरता है, वह हमें भी प्राप्त हो ॥६,६९.१॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनामनु ॥६,६९.२॥

हे कल्याण करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप हमें मधु के मधुर तत्त्व से युक्त करें, जिससे हमारी वाणी मधुर हो ।

लोगों के प्रति हम मधुर एवं भर्ग: शक्तिसम्पन्न वाणी बोलें ॥६,६९.२॥

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
तन् मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥६,६९.३॥

अन्न एवं यज्ञ के फलरूप सार में जो यश हैं तथा मुझ में जो तेजस्विता हैं, उसे प्रजापतिदेव, उसी प्रकार सुदृढ़ करें, जिस प्रकार द्युलोक में दीप्ति को स्थिर किया है ॥६,६९.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ७० – अध्न्या सूक्त

प्रेम बंधन का वर्णन

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥६,७०.१॥

जैसे मांसाहारी को मांस, शराबी को शराब, जुआरी को पासे एवं कामी पुरुष को स्त्री प्रिय होते हैं। वैसे ही हे अवध्य (गौ या प्रकृति) माता ! आप अपने बछड़े (बच्चों) से प्रेम करें ॥६,७०.१॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥६,७०.२॥

जैसे हाथी, हथिनी के पैर के साथ पैर मिलाने पर प्रसन्न होता है एवं कामी पुरुष का मन स्त्रियों में रमा रहता है, वैसे ही हे अबध्य (माँ) ! आपका मन बछड़े से जुड़ा रहे ॥६,७०.२॥

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥६,७०.३॥

जैसे रथ में चक्र को धुरी दृढ़ता से जोड़े रखती है और जैसे कामी पुरुष का मन स्त्री में रमा रहता है, वैसे ही (हे मातः !) आप अपने बछड़े से जुड़ी रहें ॥६,७०.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ७१ – अन्न सूक्त

अग्नि की प्रशंसा

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृनोतु ॥६,७१.१॥

हमने जो विविध प्रकार के अन्न तथा जो सुवर्ण, घोड़ा, गौ, बकरी, भेड़ आदि का संग्रह कर लिया है, अग्निदेव उस सम्पदा को प्रतिग्रह – दोष से मुक्त कर सुहुत (यज्ञीय संस्कार युक्त) बनाएँ ॥६,७१.१॥

यन् मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान् मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥६,७१.२॥

यज्ञ से संस्कारित एवं असंस्कारित दोनों प्रकार के जो द्रव्य, पितरों, देवताओं और मनुष्यों द्वारा हमें प्राप्त हुए हैं, जिससे हमारे मन में हर्षातिरेक हो रहा है; उन सभी को अग्निदेव सुत (यजनीय) बनाएँ ॥६,७१.२॥

यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्न् अदास्यन्न् उत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम्
॥६,७१.३॥

हे देवताओ ! असत्य व्यवहार से खायह गए अन्न एवं लियह गए ऋण को बिना चुकता किए, हम जो संग्रह करते हैं, वह अन्न वैश्वानर- अग्निदेव की कृपा से हमारे लिए मधुर और कल्याणकारी बने ॥६,७१.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ७२ – वाजीकरण सूक्त

अर्क मणि का वर्णन

यथासितः प्रथयते वशामनु वपूंषि कृण्वन्न् असुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥६,७२.१॥

जिस प्रकार बन्धनरहित पुरुष आसुरी माया द्वारा विविध रूपों का सृजन करता है। उसी प्रकार (हे देव !) आप प्रजननाङ्ग को संतानोत्पत्ति हेतु समर्थ बनाएँ ॥६,७२.१॥

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।
यावत्परस्वतः पसस्तावत्ते वर्धतां पसः ॥६,७२.२॥

सन्तति उत्पादन हेतु समर्थ जैसा शरीराङ्ग होता है, वैसा पूर्णपुरुष जैसा तुम्हारा भी अंग सन्तानोत्पादक हो ॥६,७२.२॥

यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत्ते वर्धतां पसः ॥६,७२.३॥

जिस प्रकार वन्य पशु, हाथी, घोड़ा आदि अपने शरीराङ्ग को पुष्ट तथा वीर्यवान् बनाए रखते हैं, उसी प्रकार इस पुरुष के अंग सुदृढ़ तथा पूर्णपुरुष के समान पशत्रु ष्ट हों ॥६,७२.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ७३ – सांमनस्य सूक्त

वरुण देव की स्तुति

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥१॥

अग्निदेव, सोमदेव, वरुणदेव यहाँ आएँ । समस्त देवों के स्वामी बृहस्पतिदेव आठों वसुओं के साथ आएँ । हे समान जन्म वाले ! आप समान मन वाले होकर इस उग्र चेतना सम्पन्न को श्री – सम्पन्न बनाएँ ॥६,७३.१॥

यो वः शुष्मो हृदयहष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२॥

हे बान्धवो ! जो बल आपके हृदय में है एवं जो संकल्प आपके मन में है, उनको हविष्यान्न एवं घृत के द्वारा परस्पर सम्बद्ध करते हैं । श्रेष्ठ कुलोत्पन्न आपकी रुचि हमारी ओर बनी रहे ॥६,७३.२॥

इहैव स्त माप याताध्यस्मत्पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिः वो अस्तु ॥३॥

हे बान्धवो ! आप हमसे अलग न जाएँ, हमसे स्नेहपूरित व्यवहार करें । मार्ग रक्षक पूषा देवता आपको हमारे प्रतिकूल चलने पर रोकें । वास्तोष्पति देवता हमारे लिए आपको अनुकूलतापूर्वक बुलाएँ ॥६,७३.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ७४ – सांमनस्य सूक्त

ब्रह्मणस्पति देव की स्तुति

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत्॥६,७४.१॥

हे सांमनस्य चाहने वालो ! आपके तन और मन परस्पर स्नेह से मिले रहें । कर्म भी परस्पर मिल-जुलकर श्रेष्ठ ढंग से सम्पन्न हों। भगदेव और ब्रह्मणस्पतिदेव तुमको हमारे लिए बारम्बार बुलाएँ ॥६,७४.१॥

सम्ज्ञपनं वो मनसोऽथो सम्ज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥६,७४.२॥

हे मन की समानता के इच्छुक ! भगदेवता के श्रमपूर्वक किए गए तप जैसे श्रेष्ठ कर्म के द्वारा हम आपको समान ज्ञान वाला बनाते हैं, जिससे आपके मन और हृदय समान ज्ञान से सम्पन्न बनें ॥६,७४.२॥

यथादित्या वसुभिः सम्बभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्न् अहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥६,७४.३॥

अदिति के पुत्र मित्रावरुण जिस प्रकार आठ वसुओं के साथ एवं उग्र रुद्र अपनी उग्रता को त्यागकर मरुद्गणों के साथ समान ज्ञान सम्पन्न हुए, उसी प्रकार हे तीन नामों वाले अग्निदेव ! आप क्रोध को त्याग कर इन सांमनस्य के इच्छुक मनुष्यों को परस्पर मिलाएँ ॥६,७४.३॥

सूक्त ७५ – सपत्नक्षयण सूक्त

इंद्र की स्तुति

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत्॥६,७५.१॥

शत्रुओं की जो सेना हमको पीड़ा पहुँचाने के लिए एकत्रित हो रही है, वह अपने स्थान से पतित हो जाए। शत्रु नाश के लिए अर्पित आहुतियों से इन्द्रदेव प्रसन्न होकर शत्रुओं का नाश करें ॥६,७५.१॥

परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥६,७५.२॥

वृत्रासुर के संहारकर्ता इन्द्रदेव उस शत्रु को दूरस्थ स्थान तक खदेड़ दे, जहाँ से वह सैकड़ों वर्षों में भी लौटकर न आ सके ॥६,७५.२॥

एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनामति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति ।
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत्सूर्यो असद्दिवि ॥६,७५.३॥

वह शत्रु तीनों भूमि तथा पाँचों प्रकार के जनों से दूर चला जाए। वह ऐसे स्थान में पहुँचे, जहाँ सूर्य और अग्नि का प्रकाश भी न हो । द्युलोक में जब तक सूर्यदेव हैं, तब तक वह लौट न सके ॥६,७५.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त – ७६ आयुष्य सूक्त

सायंतन अग्नि की स्तुति

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥६,७६.१॥

जो जन इस अग्नि (यज्ञ) के चारों ओर उपासना करने के लिए बैठते हैं तथा दिव्य दृष्टि के लिए इसका आधान करते हैं, उनके हृदयों में ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो ॥६,७६.१॥

अग्नेः साम्तपनस्याहमायुषे पदमा रभे ।
अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥६,७६.२॥

उस तपने वाले ज्ञानाग्नि को हम आयुष्य वृद्धि के लिए प्राप्त करते हैं। जिससे प्रकट धूम्र को अद्धाति (ऋषि या ज्ञानीजन) मुख से निकलता हुआ देखते हैं ॥६,७६.२॥

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियहण समाहिताम् ।

नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥६,७६.३॥

जो क्षत्रिय पुरुष विधिवत् स्थित अग्नि की (सन्दीपनी) आहुति का ज्ञाता है, वह कुटिल (छलपूर्ण) क्षेत्रों में (भ्रमित होकर) मृत्यु की दिशा में पैर आगे नहीं बढ़ाता ॥६,७६.३॥

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नामव गच्छति ।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णाति आयुषे ॥६,७६.४॥

ऐसा ज्ञाता क्षत्रिय दीर्घजीवन की कामना से अग्निदेव का स्तोत्र पाठ करता है, उसे घेरने वाले शत्रु भी नहीं मार सकते ॥६,७६.४॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ७७ – प्रतिष्ठापन सूक्त

जातवेद अग्नि की प्रशंसा

अस्थाद्द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत्।
आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वामतिष्ठिपम् ॥६,७७.१॥

द्युलोक, भूलोक एवं दोनों के मध्य सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने स्थान एवं मर्यादा में स्थिर हैं, पर्वत भी अपने-अपने स्थान में स्थिर हैं, वैसे ही हम स्थानि(अपनी गमनशील शक्तियों को आत्मशक्ति) द्वारा मर्यादा में स्थिर करते हैं ॥६,७७.१॥

य उदानत्परायणं य उदानण्न्यायनम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥६,७७.२॥

जो गो (इन्द्रियादि शक्तियों) के पालनकर्ता (प्राण, मन आदि) परम स्थान पाकर भी निम्न स्थानों की ओर (प्राणियों

में) आते हैं तथा जिनमें सर्वत्र आने-जाने की सामर्थ्य है, हम उनका आवाहन करते हैं ॥६,७७.२॥

जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥६,७७.३॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप इन शक्तियों को (निम्न गमन से) लौटाएँ । आने के लिए आपके पास सहस्रों मार्ग हैं। उनसे हमें आप समर्थ बनाएँ ॥६,७७.३॥

सूक्त ७८ – धनप्राप्ति प्रार्थना सूक्त

अग्नि देव की प्रशंसा

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥६,७८.१॥

प्रदत्त हवि इस (पुरुष) को एवं जो स्त्री इसे प्रदान की गयी है, उसे भी बारम्बार पुष्ट करे । पुष्टिकारक रसों से इन दोनों की वृद्धि हो ॥६,७८.१॥

अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥६,७८.२॥

पति-पत्नी दोनों दुग्धादि से पुष्ट हों, राष्ट्र के साथ विकसित हों तथा अनेक प्रकार के तेजस्वी ऐश्वर्य से यह दोनों परिपूर्ण रहें ॥६,७८.२॥

त्वष्टा जायामजनयत्त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।

त्वष्टा सहस्रमायुंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥६,७८.३॥

त्वष्टादेव ने इस स्त्री को उत्पन्न किया है, है पति ! आपको भी त्वष्टादेव ने इस स्त्री के लिए उत्पन्न किया हैं । वह त्वष्टादेव ही आप दोनों को दीर्घायुष्य प्रदान कर, सहस्रों वर्षों तक जीवनयापन करने वाला बनाएँ ॥६,७८.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ७९ – ऊर्जाप्राप्ति सूक्त

अंतरिक्ष के पालनकर्ता अग्नि की प्रशंसा

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु ।
असमातिं गृहेषु नः ॥६,७९.१॥

अग्निदेव आहुतियों को द्युलोक तक पहुँचाते हैं, इसलिए पालक कहलाते हैं। वह अग्निदेव हमारे घरों को धन-धान्य आदि सामग्री से भरपूर रखें ॥६,७९.१॥

त्वं नो नभसस्पते ऊर्जं गृहेसु धारय ।
आ पुष्टमेत्वा वसु ॥६,७९.२॥

हे अन्तरिक्ष के स्वामी वायुदेव ! आप हमारे घरों को बलवर्द्धक रसमय अन्न से भरें। प्रजा, पशु तथा अन्य पुष्टिकारक धन-धान्य भी हमें प्राप्त हो ॥६,७९.२॥

देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे ।
तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवाम्सः स्याम ॥६,७९.३॥

हे आदित्यदेव ! आप हजारों पोषक सम्पदाओं के ईश्वर हैं। आप अपनी उन सम्पदाओं को हमें प्रदान करें। आपकी कृपा-अनुग्रह से हम ऐश्वर्य के भागीदार बनें ॥६,७९.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ८० – अरिष्टक्षयण सूक्त

अग्नि की स्तुति

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत्।
शुनो दिव्यस्य यन् महस्तेना ते हविषा विधेम ॥६,८०.१॥

विश्व के भूतों (पदार्थों – प्राणियों) को प्रकाशित करता हुआ, जो अन्तरिक्ष से अवतरित होता है । उस दिव्यलोक के शुनः(फूले हुए पिण्ड-सूर्य) की जो महत्ता है, उससे प्राप्त हविष्य हम, आपको अर्पित करते हैं ॥६,८०.१॥

यह त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वान् अह्व ऊतयहऽस्मा अरिष्टतातयह ॥६,८०.२॥

यह जो तीन कालकाञ्ज (असुर या पदार्थ कण) द्युलोक में देवों की तरह रहते हैं, उन्हें हम अपनी रक्षा के लिए तथा कल्याण के लिए आवाहित करते हैं ॥६,८०.२॥

अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन् महस्तेना ते हविषा विधेम ॥६,८०.३॥

हे अग्निदेव ! आपकी जल में विद्‌युतुरूप उत्पत्ति है, द्‌युलोक में आपका आदित्यात्मक भाव से स्थान है । समुद्र के बीच में तथा पृथ्वी पर आपकी महिमा स्पष्ट है । हे अग्निदेव ! दिव्य श्वान (सूर्य) के तेज़रूप हवि से हम आपका पूजन करते हैं ॥६,८०.३॥

सूक्त ८१- गर्भाधान सूक्त

अग्नि की स्तुति

यन्तासि यछसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥६,८१.१॥

हे अग्ने ! आसुरी वृत्तियों एवं शक्तियों को आप अपने वश में रखने में समर्थ हैं एवं दोनों हाथों से उन्हें नष्ट करते हैं, ऐसे देव पुत्र-पौत्रादिरूप प्रजा एवं धन की सुरक्षा करने वाले कंकण (तेजोवलय) सिद्ध हुए हैं ॥६,८१.१॥

परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥६,८१.२॥

हे तेजोवलय ! आप गर्भ और योनि (उत्पादन क्षेत्र) की सुरक्षा करें । हे मयदे ! आप पुत्र धारण करें एवं समय पूर्ण होने पर उसे बाहर आने की प्रेरणा दें ॥६,८१.२॥

यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद्यथा पुत्रं जनाद्॥६,८१.३॥

जिस कंकण को पुत्र की कामना वाली अदिति देवी ने धारण किया था, उसे त्वष्टा (रचना कुशल) देव उसे नारी (या प्रकृति) को धारण कराएँ, ताकि वह पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ हो ॥६,८१.३॥

सूक्त ८२ – जायाकामना सूक्त

इंद्र की प्रशंसा

आगछत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥१॥

वृत्रासुर-संहारक, वसुओं से उपासित शतक्रतु इन्द्रदेव का नाम लेकर (उनकी साक्षी में) आने वाले जो अति समीप आ गए हैं, मैं उन (शक्ति प्रवाहों या वरों) का वरण (अपनी इन्द्रियों या पुत्रियों के लिए) करता हूँ॥६,८२.१॥

यहन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद्भगो जयामा वहतादिति ॥२॥

भग देवता ने मुझसे कहा – "अश्विनीकुमारों ने जिस मार्ग द्वारा सूर्या – सावित्री को प्राप्त किया था, उसी उत्तम मार्ग से तुम भी स्त्री प्राप्त करो" ॥६,८२.२॥

यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्न् इन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनियते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपका जो धन देने में समर्थ , स्वर्ण का बड़ा अंकुश (नियन्त्रण सामर्थ्य) हैं, उसी से मुझ पुत्राभिलाषी को आप स्त्री प्रदान करें ॥६,८२.३॥

सूक्त ८३ – भैषज्य सूक्त

सूर्य द्वारा गंडमालाओं की चिकित्सा

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोछतु ॥६,८३.१॥

हे गण्डमाला रोग ! तुम (शरीर को छोड़कर) घोंसले से निकलने वाले गरुड़ की तरह (तीव्र गति से) निकलते जाओ । सूर्यदेव रोग की औषधि बनाएँ और चन्द्रमा रोग को दूर करें ॥६,८३.१॥

एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥६,८३.२॥

हे गण्डमालाओ !तुम (वात, पित्त, कफ भेद से) चितकबरी, श्वेत, काली तथा रक्तवर्ण वाली हो, इस तरह सब नाम हमने

लिया । हे अपचितो !(इससे प्रसन्न होकर) तुम वीरपुरुष की हिंसा न करो और यहाँ से चली जाओ ॥६,८३.२॥

असूतिका रामायण्यपचित्प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥६,८३.३॥

गलने वाली, सड़ने वाली गण्डमाला की जड़ नाड़ियों में छिपी रहती है। यह (गण्डमाला) मूल कारण सहित नष्ट हो जाए ॥६,८३.३॥

वीहि स्वामाहुतिं जुषानो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥(६,८३.४॥

हम मन से हवन करते हैं, यह हवन उत्तम हो । तुम अपनी आहुति ग्रहण कर यहाँ से भाग जाओ ॥६,८३.४॥

सूक्त ८४ – नितिमोचन सूक्त

निर्ऋति का वर्णन

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम्।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥६,८४१॥

हे निर्ऋते (दुर्गति के बन्धनो) ! पीड़ितों को मुक्त करने के लिए हम तुम्हारे क्रूर मुख में आहुति देते हैं। तुम मन से उसे ग्रहण करके रोगी को रोग-मुक्त करो। औषधियों से तैयार हुआ यह जल रोगी को रोग-मुक्त करे । साधारणतया तुम्हें लोग ब्रह्मरूप से जानते हैं; परन्तु हम तुम्हारे कारणरूप पाप को भी जानते हैं ॥६,८४१॥

भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमान् अमून् एनसः स्वाहा ॥६,८४२॥

हे सर्वत्र विद्यमान निर्ऋतं ! तुम हमारे द्वारा दी गई आहुति से हवयुक्त हो, अपना शमन करो । इन गो (गाय या इन्द्रियाँ) आदि को रोग के कारणरूप पापों से मुक्त करो ॥६,८४२॥

एवो ष्वस्मन् निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित्त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥६,८४३॥

हे निर्ऋते ! तुम रोग-बन्धन से मुक्त करके हमें सुख प्रदान करो । हे रोगिन् ! तुमको मृत्यु के देवता यम ने फिर हमारे निमित्त लौटा दिया है। अत: उन प्राणापहारी यमदेव को नमस्कार है ॥६,८४३॥

अयस्मयह द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयहमम् ॥६,८४४॥

हे निऋते ! जब तुम लौह और काष्ठयुक्त अपने बन्धनों से जकड़ती हो, तब वह हजारों मारक दुःखों से बँध जाता है। पितरों और यम से मिलकर तुम इसे श्रेष्ठ दुःखरहित स्वर्ग के समान स्थिति तक पहुँचाओ ॥६,८४॥

सूक्त ८५ – यक्ष्मनाशन सूक्त

वरण मणि द्वारा राजयक्ष्मा रोग का निवारण

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्न् आविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥६,८५.१॥

यह दानादि गुण-सम्पन्न वरण वृक्ष की मणि राजयक्ष्मा आदि रोगों को नष्ट करे । इस रोग- पीड़ित को देवगण रोग से मुक्त करें ॥६,८५.१॥

इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥६,८५.२॥

हे रोगिन् ! मणि-बन्धनकर्ता हम, इन्द्रदेव, मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं के वचनों के द्वारा तुम्हारे यक्ष्मा रोग को हटाते हैं ॥६,८५.२॥

यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।

एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारयह ॥६,८५.३॥

जिस प्रकार वृत्रासुर ने जगत्-पोषक, मेघ स्थित जल-प्रवाह को रोका था, उसी प्रकार हे रोगिन् ! हम वैश्वानर अग्निदेव के द्वारा तुम्हारे रोग को रोकते हैं ॥६,८५.३॥

सूक्त ८६ – वृषकामना सूक्त

इंद्र की स्तुति

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृसा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥६,८६.१॥

यह श्रेष्ठता की इच्छा वाला पुरुष, इन्द्रदेव की कृपा से तृप्त करने वाला हो । यह द्युलोक को तृप्त करके पर्जन्य की वर्षा द्वारा समस्त प्राणियों को तृप्त करने वाला हो । (हे श्रेष्ठता की इच्छा वाले पुरुष) तुम सर्वश्रेष्ठ हो ॥६,८६.१॥

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥६,८६.२॥

जैसे जल के स्वामी समुद्र, पृथ्वी के स्वामी अग्नि, नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हैं, वैसे ही हे श्रेष्ठता के चाहने वाले पुरुष ! तुम भी सर्वश्रेष्ठ बनो ॥६,८६.२॥

सम्राडस्यसुराणां ककुन् मनुष्यानाम् ।
देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव ॥६,८६.३॥

हे इन्द्रदेव ! आप असुरों के सम्राट् और तुलना की दृष्टि से देवताओं के अर्धभाग (सर्वश्रेष्ठ) हो । हे श्रेष्ठता की कामना वाले पुरुष ! ऐसे श्रेष्ठ इन्द्रदेव की कृपा से तुम भी श्रेष्ठ हो जाओ ॥६,८६.३॥

सूक्त ८७ – राज्ञः संवरण सूक्त

अच्छे राजा की कामना

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत्।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्॥६,८७.१॥

हे राजन् ! आपको इस (राष्ट्र या क्षेत्र) का अधिपति नियुक्त किया गया है । आप इसके स्वामी हैं, आप नित्य अविचल और स्थिर होकर रहें । प्रजाजन आपकी अभिलाषा करें। आपके माध्यम से राष्ट्र का गौरव क्षीण न हो ॥६,८७.१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत्।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥६,८७.२॥

आप इसमें ही अविचल होकर रहें । कभी पद से वंचित न हों । पर्वत के समान आप निश्चल होकर रहें । जैसे स्वर्ग में

इन्द्रदेव हैं, वैसे ही आप पृथ्वी पर स्थिर होकर शासन करें और राष्ट्र का नेतृत्व करें ॥६,८७.२॥

इन्द्र एतमदीधरद्ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥६,८७.३॥

इन्द्रदेव इस (अधिपति) को अक्षय यजनीय सामग्री उपलब्ध करके स्थिरता प्रदान करें । सोम उन्हें अपना आत्मीय मानें । ब्रह्मणस्पति भी उन्हें आत्मीय ही समझें ॥६,८७.३॥

सूक्त ८८ – ध्रुवोराजा सूक्त

अच्छे राज्य के लिए वरुण, बहस्पति और सूर्य की प्रशंसा

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥६,८८.१॥

जिस प्रकार आकाश, पृथ्वी, सम्पूर्ण पर्वत और समस्त विश्व अविचल हैं, उसी प्रकार यह प्रजाजनों के स्वामी 'राजा' भी स्थिर रहें ॥६,८८.१॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥६,८८.२॥

हे राजन् ! आपके राष्ट्र को वरुणदेव स्थायित्व प्रदान करें । दिव्य गुणों से युक्त बृहस्पतिदेव स्थिरता प्रदान करें । इन्द्रदेव और अग्निदेव भी आपके राष्ट्र को स्थिर रूप से धारण करें ॥६,८८.२॥

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रून् छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह
॥६,८८.३॥

हे राजन् ! अपने को सुदृढ़- स्थिर रखकर शत्रुओं को मसल डालो । जिनका आचरण शत्रुओं के समान है, ऐसों को भी गिरा दो। शत्रु नाश होने पर समस्त दिशाओं की प्रजा समान बुद्धि एवं समान मन वाली हो और उनकी समिति आपकी सुदृढ़ता के लिए योजना बनाने में समर्थ हो ॥६,८८.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ८९ – प्रीतिसंजनन सूक्त

वरुण, सरस्वती, आदि की पतिपत्नी मिलन के लिए प्रशंसा

इदं यत्प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥६,८९.१॥

सोम-प्रदत्त, प्रेम करने वाला यह बलवान् सिर है, इससे उत्पन्न हुए बल से अर्थात् प्रेम से हम आपके हृदय के भावों को उद्दीप्त करते हैं ॥६,८९.१॥

शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूम इव सध्र्यङ्मामेवान्वेतु यह मनः ॥६,८९.२॥

हम तुम्हारे हृदय के भावों को उद्दीप्त करते हैं । तुम्हारे मन को प्रेम भाव से प्रभावित करते हैं, जिससे तुम हमारे प्रति

उसी प्रकार अनुकूल हो जाओ, जिस प्रकार धूम्र, वायु के अनुकूल एक ही दिशा में प्रवाहित होता हैं ॥६,८९.२॥

महां त्वा मित्रावरुणौ महां देवी सरस्वती ।
महां त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥६,८९.३॥

मित्रावरुणदेव, देवी सरस्वती, पृथ्वी के दोनों अन्तिमभाग एवं मध्यभाग (निवासी- प्राणी) तुम्हें हमारे प्रति जोड़े अर्थात् इन सब दिव्य-शक्तियों की कृपा से तुम्हारी स्नेह हमारे प्रति बढ़े ॥६,८९.३॥

सूक्त ९० – इषुनिष्कासन सूक्त

रुद्र देव की प्रशंसा

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
इदं तामद्य त्वद्वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥६,९०.१॥

हे पीड़ित ! शूल रोग के अधिष्ठाता देव, रुलाने वाले रुद्रदेव ने तुम्हारे अङ्गों एवं हृदय को बींधने के लिए, बाणों को फेंका हैं । हम आज उन्हें उखाड़ते हैं ॥६,९०.१॥

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः ।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥६,९०.२॥

हे शूल रोगी पुरुष ! तुम्हारे शरीर के अङ्ग ग्वं धमनियों आदि की विषाक्तता को इन औषधियों के द्वारा समाप्त कर उन्हें विषरहित करते हैं ॥६,९०.२॥

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै ।
नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥६,९०.३॥

है रुद्र ! आपको नमस्कार है । आपके धनुष पर चढ़े हुए बाण एवं छोड़े गए बाण को भी नमस्कार है ॥६,९०.३॥

सूक्त ९१ – यक्ष्मनाशन सूक्त

यक्ष्मा रोग का विनाश

इमं यवमष्टायोगैः षद्योगेभिरचर्कृषुः ।
तेना ते तन्वो रपोऽपाचीनमप व्ययह ॥६,९१.१॥

इस जौ को आठ बैलों वाले तथा छह बैलों वाले हल से जोतकर, औषधि के निमित्त उत्पन्न किया है । हे रोगिन् ! हम इस जौ के द्वारा रोग-बीज को निम्नगामी करके निकालते हैं ॥६,९१.१॥

न्यग्वातो वाति न्यक्तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥६,९१.२॥

वायुदेव, दिव्यलोक से नीचे के लोक में प्रवाहित होते हैं, सूर्यदेव ऊपर से नीचे की ओर ताप देते हैं, गौ नीचे की ओर

दुही जाती हैं, उसी प्रकार से आपके अमंगल भी अधोगामी हों ॥६,९१.२॥

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥६,९१.३॥

जल सम्पूर्ण रोगों का निवारक हैं । जल ही रोगों के (मूल) कारण का नाश करने वाला है। जल ही सबके लिए हितकारी औषधिरूप है, वह आपके निमित्त रोगनाशक हो ॥६,९१.३॥

सूक्त ९२ – वाजी सूक्त

वेगवान अश्व की प्रशंसा

वातरंहा भव वाजिन् युजमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः
।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वस्ता पत्सु जवं दधातु
॥६,९२.१॥

हे अश्व ! तुम रथ में युक्त होने पर वायु-वेग वाले हो । तुम अपने लक्ष्य तक इन्द्रदेव की प्रेरणा से, मन जैसी तीव्र गति से पहुँचो सबके ज्ञाता मरुद्गण तुमसे जुड़े तथा त्वष्टादेव तुम्हारे पैरों को वेगवान् बनाएँ ॥६,९२.१॥

जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वाते उत योऽचरत्परीत्तः
।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने परयिष्णुः
॥६,९२.२॥

हे अश्व ! श्येन पक्षी के समान एवं वायु के समान वेग तुम्हारे अन्दर छिपा है, उसे प्रकट कर बलवान् बनकर, तीव्र गति से संग्राम में पार करने वाले होकर युद्ध को जीतो ॥६,९२.२॥

तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् । अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात्॥६,९२.३॥

हे वेगवान् अश्व ! तुम्हारे शरीर पर सवार हमारे शरीर गन्तव्य पर शीघ्र पहुँचें । तुम्हें घाव आदि से बचाकर सुख प्रदान करते हैं। तुम द्युलोक के सूर्य के समान बनकर सहज ज्ञान से चलकर अपने निवास तक पहुँचो ॥६,९२.३॥

सूक्त ९३ – स्वस्त्ययन सूक्त

यम आदि की प्रशंसा

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान्
॥६,९३.१॥

नियामक मृत्युदेव, पापियों को मारने वाले, उत्पीड़क, पोषक, हिंसक, शस्त्र फेंकने वाले, नील शिखा वाले, पापियों की हिंसा करने के लिए अपनी सेना के साथ चढ़ाई करने वाले यह देवता हमारे पुत्र-पौत्रादि को सुरक्षित रखकर सुख प्रदान करें ॥६,९३.१॥

मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु
॥६,९३.२॥

संकल्प द्वारा, घृतादि की आहुति द्वारा हम शर्व (फेंके जाने वाले) अस्त्र के स्वामी रुद्रदेव और अन्य नमस्कार योग्यों को नमस्कार करते हैं । (जिसके परिणाम स्वरूप) पापरूपी विष हमसे दूर चले जाएँ ॥६,९३.२॥

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद्विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः । अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥६,९३.३॥

हे मरुद्गणं और विश्वेदेवो ! आप अघविषा वाली कृत्याओं और उनके संहारक साधनों से बचाएँ । मित्र, वरुण, अग्नि और सोमदेव हमें बचाएँ एवं वायु तथा पर्जन्य देवता हम पर अनुग्रह करें ॥६,९३.३॥

सूक्त ९४ – सांमनस्य सूक्त

सरस्वती देवी की आराधना

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी यह विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥६,९४.१॥

हे विरुद्ध मन वाले मनुष्यो ! हम तुम्हारे मनों, विचारों एवं संकल्पों को एक भाव से युक्त कर, परस्पर विरोधी कार्यों को अनुकूलता में परिवर्तित करते हैं ॥६,९४.१॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥६,९४.२॥

हे विरुद्ध मन वाले मनुष्यो ! तुम्हारे मनों को हम अपने अनुकूल करते हैं। तुम अनुकूल चित्त वाले यहाँ आओ।

तुम्हारे हृदयों को हम अपने वश में करते हैं। तुम हमारा अनुसरण करते हुए कर्म करो ॥६,९४.२॥

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च ध्र्यास्मेदं सरस्वति ॥६,९४.३॥

द्यावा-पृथिवी परस्पर अभिमुख होकर हमसे संबद्ध हैं, वाक् देवी सरस्वती भी संबद्ध हैं, इन्द्रदेव और अग्निदेव भी हमसे संबद्ध हैं, अत: हम सब इनकी कृपा से समृद्ध हों ॥६,९४.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ९५ – कुष्ठौषधि सूक्त

कुठ वनस्पति का वर्णन

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥६,९५.१॥

यहाँ से तीसरे द्युलोक में देवताओं के बैठने का अश्वत्थ है, वहाँ अमृत का वर्णन करने वाले 'कुष्ठ(औषधि) का ज्ञान देवताओं ने प्राप्त किया ॥६,९५.१॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥६,९५.२॥

हिरण्य (तेजोमय पदार्थ) से बनी नौका हिरण्य (तेजस्) के बन्धनों से बँधी हुई स्वर्ग में चलती हैं । वहाँ अमृत- पुष्प, 'कुष्ठ(औषधि) को देवताओं ने प्राप्त किया ॥६,९५.२॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ॥६,९५.३॥

हे अग्ने ! औषधियों के गर्भ में आप हैं । हिमवालों के गर्भ में भी आप हैं। आप हीं समस्त भूत-प्राणियों में गर्भरूप में रहते हैं, ऐसे में अग्निदेव ! आप हमारे रोगी को रोग-मुक्त करें ॥६,९५.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ९६ – चिकित्सा सूक्त

वनस्पतियों के देव राजा सोम की प्रशंसा

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६,९६.१॥

जो सैकड़ों प्रकार की औषधियाँ हैं, उनमें सोम का निवास है । जो बृहस्पतिदेव के द्वारा अनेक रोगों में प्रयोग की गई हैं, वह औषधियाँ हमें रोगमूलक पाप से छुड़ाएँ ॥६,९६.१॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद्विश्वस्माद्देवकिल्बिषात्॥६,९६.२॥

जल अथवा औषधियाँ हमें शापजनित रोग या पाप से बचाएँ । मिथ्या-भाषण से लगने वाले वरुणदेव के अधिकार वाले पापों से बचाएँ । यमराज के पाप 'बन्धन-पाश' से बचाएँ और समस्त देव- सम्बन्धी पापों से में मुक्त रखें ॥६,९६.२॥

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥६,९६.३॥

हमने जागते हुए या सोते हुए जो पाप कर्म इन्द्रियों द्वारा, वाणी द्वारा अथवा मन द्वारा किए हों, हमारे उन समस्त पापों से सोम देवता अपनी पवित्र शक्ति द्वारा, हमें मुक्त करें ॥६,९६.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ९७ – अभिभूर्वीर सूक्त

मेधावी मित्र और वरुण का वर्णन

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः ।
अभ्यहं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः
॥६,९७.१॥

यज्ञदेव, अग्निदेव, सोमदेव और इन्द्रदेव शत्रुओं को पराभूत करें। हम इन समस्त देवों की कृपा से शत्रु-सेनाओं को जीत लें, इस निमित्त यह हवि अग्निदेव को अर्पित करते हैं ॥६,९७.१॥

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत्क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम्
।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्॥६,९७.२॥

हे विद्वान् मित्र और वरुणदेव ! यह हविरूप अन्न आपको तृप्त करे । आप प्रज्ञा को क्षत्रिय बल से सींचें । निति देवता को हमसे दूर करें तथा किए गए पापों से भी हमको मुक्त करें ॥६,९७.२॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥६,९७.३॥

हे वीरो ! यह वीर्यवान् राजा वीररस से हर्षित हो, तुम भी अनुयायी बनो । गाँवों को जीतने वाले, उग्र स्वभाव वाले, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, वज्र के समान भुजाओं वाले, शत्रुओं को जीतने वाले, शस्त्र फेंककर शत्रु पर वार करने वाले वीर के अनुकूल रहकर अपना व्यवहार करो अर्थात् युद्ध हेतु सदैव तैयार रहो॥६,९७.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ९८ – अजरक्षत्र सूक्त

इंद्र की स्तुति

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्य्भवेह ॥६,९८.१॥

इन्द्रदेव (या राजा) की विजय हो । वह कभी पराजित न हों । राजाधिराज हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का नाश करने वाले स्तुत्य हैं, वन्दनीय हैं । इस कारण आप हमारे द्वारा नमस्कार करने योग्य हैं ॥६,९८.१॥

त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत्क्षत्रमजरं ते अस्तु
॥६,९८.२॥

हे राजेन्द्र ! आप अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक कीर्ति-सम्पन्न हों। आप प्रजाजनों को समृद्धशाली बनाएँ । इन

देव सम्बन्धी प्रज्ञाओं के आप स्वामी बनें। आपका क्षाबल बड़े एवं आप जरारहित दीर्घ आयु वाले हों ॥६,९८.२॥

प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहन् छत्रुहोऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥६,९८.३॥

हे इन्द्रदेव ! आप पूर्व आदि समस्त दिशाओं के स्वामी हों । आप वृत्रासुरहन्ता हैं, शत्रुनाशक हैं । समस्त भूमण्डल आपका है । कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं इन्द्रदेव ! हम आपका आवाहन करते हैं, आप हमें इस संग्राम में विजयी बनाएँ॥६,९८.३॥

सूक्त ९९ – संग्रामजय सूक्त

इंद्र की स्तुति

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे ।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥६,९९.१॥

हे इन्द्रदेव ! पाप या पराजय के पूर्व ही हम आपका आवाहन करते हैं। आप प्रचण्ड बल-सम्पन्न एवं संग्राम जीतने में निपुण हैं । आप बहुत नाम वाले तथा अकेले ही युद्ध जीतने वाले शूर- वीर हैं ॥६,९९.१॥

यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥६,९९.२॥

शत्रु सेना हमें मारने के लिएजिन आयुधों को उठा रही हैं, (उनसे बचने के लिए) रक्षा करने में समर्थ इन्द्रदेव की

भुजाओं को हम अपने चारों ओर रक्षा-कवच के रूप में धारण करते हैं ॥६,९९.२॥

परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तयह ॥६,९९.३॥

इन्द्रदेव, जिनकी भुजाओं को हमने अपने चारों ओर धारण किया है, वह हमारी रक्षा करें । हे सवितादेव एवं सोमदेव ! आप कल्याण करने वाले हैं, आप हमारा मन श्रेष्ठ वनाएँ, जिससे हम युद्ध में विजय पा सकें॥६,९९.३॥

सूक्त १०० – विषदूषण सूक्त

इड़ा, सरस्वती और भारती द्वारा विष विनाशक औषधि प्रदान करना

देवा अदुः सूर्यो द्यौरदात्पृथिव्यदात्।
तिस्रः सरस्वतिरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥६,१००.१॥

इन्द्र आदि समस्त देवता हमें स्थावर एवं जंगम विनाशक औषधि प्रदान करें । सर्वप्रेरक सवितादेव, इड़ा, सरस्वती एवं भारती देवियाँ भी हमें ऐसी औषधि प्रदान करें ॥६,१००.१॥

यद्वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।
तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम् ॥६,१००.२॥

हे देवताओं ! उपजीका(औषधि) ने जलरहित मरुस्थल में जल को क्षरित किया है। उन देवताओं में प्रदत्त जल द्वारा विष को नष्ट करें ॥६,१००.२॥

असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ॥६,१००.३॥

हे औषधे ! तुम असुरों की पुत्री हो और देवताओं की बहन हो । हे अन्तरिक्ष और पृथ्वी से उत्पन्न मृत्तिके ! तुम स्थावर एवं जंगम विष को दूर करो ॥६,१००.३॥

सूक्त १०१ – वाजीकरण सूक्त

पुरुष को गर्भाधान करने में समर्थ होने का आशीर्वाद

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥६,१०१.१॥

हे पुरुष ! तुम सेंचन समर्थ वृषभ के समान प्राणवान् हो । शरीर के अङ्ग-अवयव सुदृढ़ एवं वर्धित हों। इस प्रकार (मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से परिपक्व तथा पुष्ट होने पर ही) स्त्री को प्राप्त करो॥६,१०१.१॥

यहन कृषं वाजयन्ति यहन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥६,१०१.२॥

जिस रस के द्वारा कृश पुरुष को वीर्यवान् बनाते हैं और जिसके द्वारा रुग्ण पुरुष को पुष्ट किया जाता है । हे बह्मणस्पते ! उसके द्वारा आप इस पुरुष के शरीराङ्गको,

प्रत्यञ्चा चढ़े धनुष के समान सामर्थ्य वाला बनाएँ ॥६,१०१.२॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्व ऋष इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥६,१०१.३॥

हे वीर्यकामी पुरुष ! अब हम लक्ष्य-वेधन में समर्थ धनुष पर चढ़ी प्रत्यञ्चा के समान तुम्हारे शरीराङ्ग को पुष्ट करते हैं। तुम प्रसन्न मन एवं हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले होने पर, जीवनसंगिनी के साथ रहो ॥६,१०१.३॥

सूक्त १०२-अभिसांमनस्य सूक्त

अश्विनीकुमारों की स्तुति

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥६,१०२.१॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार रथ में जुते हुए घोड़े वाहक की इच्छानुसार बर्ताव करते हैं, उसी प्रकार आपका मन हमारी ओर आकर्षित रहे और आप सदैव हमारे अनुकूल व्यवहार करें ॥६,१०२.१॥

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥६,१०२.२॥

आपके मन को मैं उसी प्रकार अपनी ओर आकर्षित करता हूँ, जिस प्रकार अश्वराज बँटे में बँधी रज्जु को क्रीड़ा में सहज ही उखाड़ कर अपनी ओर खींच लेता है तथा वायु द्वारा उखाड़ा गया तृण जिस प्रकार वायु में ही घूमता रहता

है, उसी प्रकार आपका मन हमारे साथ ही रमण करे ॥६,१०२.२॥

आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥६,१०२.३॥

आपके ऐश्वर्य प्रदायक अञ्जन के समान हर्षदायक, कुष्ठ' तथा 'नल' के हाथों द्वारा हम आपकी अनुकूलता प्राप्त करते हैं ॥६,१०२.३॥

सूक्त १०३- शत्रुनाशन सूक्त

ब्रहस्पति देव की आराधना

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥६,१०३.१॥

हे शत्रुओ ! बृहस्पतिदेव तुम्हें पाश में बाँधे । सर्वप्रेरक सवितादेव तुम्हें बाँधे। अर्यमा देवता भी तुम्हें बन्धन में डालें । भगदेव और अश्विनीकुमार भी तुम्हें बाँधे ॥६,१०३.१॥

सं परमान्त्समवमान् अथो सं द्यामि मध्यमान् ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तान् अग्ने सं द्या त्वम् ॥६,१०३.२॥

शत्रुओं को हम पाश द्वारा बाँधते हैं। दूर स्थित, मध्य में स्थित एवं समीपस्थ सेनाओं को हम नष्ट करते हैं। इन्द्रदेव सेनापतियों को अलग करें और हे अग्निदेव ! आप उनको पाश के द्वारा बाँधकर अपने अधीन करें ॥६,१०३.२॥

अमी यह युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्न तान् अग्ने सं द्या त्वम् ॥६,१०३.३॥

फहराते हुए ध्वजाओं वाले शत्रु- संघ रणक्षेत्र में संग्राम के लिए उतावले होकर आ रहे हैं । हे इन्द्रदेव ! आप इन्हें अलग-अलग कर दें और हे अग्निदेव ! आप इन्हें पाश में बाँधकर अपने अधीन कर लें ॥६,१०३.३॥

सूक्त १०४ – शत्रुनाशन सूक्त

इंद्र और अग्नि की प्रशंसा

आदानेन संदानेनामित्रान् आ द्यामसि ।
अपाना यह चैषां प्राणा असुनासून्त्समछिदन् ॥६,१०४.१॥

आदान और संदान नामक पाशों में हम शत्रुओं को बाँधते हैं। उन शत्रुओं के जो अपान और प्राण हैं, उन्हें हम जीवनी-शक्ति के साथ छिन्न-भिन्न करते हैं ॥६,१०४.१॥

इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।
अमित्रा यहऽत्र नः सन्ति तान् अग्न आ द्या त्वम् ॥६,१०४.२॥

हमने इस आदान नामक पाश यन्त्र को तप के द्वारा सिद्ध कर लिया है, जो इन्द्रदेव द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ है । हे अग्निदेव ! आप संग्राम में हमारे शत्रुओं को पाश से बाँधे ॥६,१०४.२॥

ऐनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ ।
इन्द्रो मरुत्वान् आदानममित्रेभ्यः कृणोतु नः ॥६,१०४.३॥

इन्द्रदेव और अग्निदेव प्रसन्न होकर इन शत्रुओं को बन्धन युक्त करें । राजा सोम एवं इन्द्रदेव मरुद्गणों के सहयोग से हमारे शत्रुओं को बाँधे ॥६,१०४.३॥

सूक्त १०५ – कासशमन सूक्त

खांसी रोग से मुक्ति की कामना

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥६,१०५.१॥

जिस प्रकार शीघ्रगामी मन जानने योग्य दूर स्थित पदार्थों तक शीघ्रता से पहुँचता है, उसी प्रकार हे कासे (खाँसी रोग) ! तुम मन के वेग से इस रोगी को छोड़कर दूर भाग जाओ ॥६,१०५.१॥

यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥६,१०५.२॥

तीक्ष्ण बाण जिस प्रकार दूर जाकर भूमि पर गिरता है, उसी प्रकार हे कासे ! तुम भी अति वेग से भूमि के अन्य स्थल पर जाकर गिरो ॥६,१०५.२॥

यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥६,१०५.३॥

जिस प्रकार सूर्य किरणे शीघ्रता से दूर तक पहुँचती हैं, वैसे ही हे कासे ! तुम इस रोगी को छोड़ कर समुद्र के विविध प्रवाहों वाले प्रदेश में प्रस्थान करो ॥६,१०५.३॥

सूक्त १०६ – दूर्वाशाला सूक्त

अग्निशाला की स्तुति

आयने ते परायने दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥६,१०६.१॥

हे अग्निदेव ! आप अभिमुख होकर अथवा पराङ्मुख होकर गमन करते हैं, तो हमारे देश में फूलसहित दूर्वा उगती है। हमारे गृहादि स्थानों में सरोवर हो, जिनमें कमल खिलें ॥६,१०६.१॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥६,१०६.२॥

हमारा घर जलपूर्ण रहे ।वह बड़ी जलराशियों के निकट हो । हे अग्ने ! आप अपनी ज्वालाओं को पीछे करें ॥६,१०६.२॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।

शीतहृदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥६,१०६.३॥

हे शाले ! हम तुम्हें शीतल वातावरण से युक्त करते हैं। तुम हमें शीतलता प्रदान करो। अग्निदेव हमारे लिए शीत निवारण के निमित्त औषधि स्वरूप बने ॥६,१०६.३॥

सूक्त १०७ – विश्वजित् सूक्त

विश्वजित देव की स्तुति

विश्वजित्त्रायमाणायै मा परि देहि ।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्
॥६,१०७.१॥

हे विश्वजित् देव ! आप जिस त्रायमाणा (रक्षक) शक्ति के सहयोग से जगत् का पालन करते हैं, उनके आश्रय में हमें रखें । आप हमारे चौपायों (गौओं, घोड़ों आदि) एवं दो- पैर वालों (पुत्र-पौत्र, सेवक आदि) की रक्षा करें ॥६,१०७.१॥

त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।
विश्वजिद्द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्
॥६,१०७.२॥

हे आयमाण देव ! आप हमें विश्वजित् देव को प्रदान करें । हे विश्वजित् ! आप हमारे चौपायों एवं दो पैर वालों की रक्षा करें ॥६,१०७.२॥

विश्वजित्कल्याण्यै मा परि देहि ।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाड्यच्च नः स्वम् ॥६,१०७.३॥

हे विश्वजित् देव ! आप हमें कल्याणी शक्ति के अधीन करें । हे कल्याण ! आप हमारे दो पैर वालों एवं चार पैर वालों की रक्षा करें ॥६,१०७.३॥

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।
सर्वविद्द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाड्यच्च नः स्वम् ॥६,१०७.४॥

हे कल्याणी देवि ! आप हमें समस्त कार्यों के ज्ञाता सर्वविद् देव को प्रदान करें । हे सर्वविद् देव ! आप हमारे दो पैर वालों एवं चार पैर वालों की रक्षा करें ॥६,१०७.४॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १०८- मेधावर्धन सूक्त

मेघा देवी और अग्नि की आराधना

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥६,१०८.१॥

हे देवत्व को धारण करने में समर्थ मेधे ! आप हम सबके द्वारा सर्व प्रथम पूज्य हैं। आप गौओं, अश्वों सहित हमें प्राप्त हों । सूर्य किरणों के समान सर्वव्यापक शक्तिसहित आप हमारे पास आएँ ॥६,१०८.१॥

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥६,१०८.२॥

वेदों से युक्त ब्रह्मण्वती, ब्राह्मणों से सेवित ब्रह्मजूता, अतीन्द्रियार्थदर्शी ऋषियों द्वारा प्रशंसित, ब्रह्मचारियों द्वारा प्रवर्धित या स्वीकार की गई श्रेष्ठ मेधा बुद्धि का, हुम

देवताओं या देवत्व की रक्षा के लिएआवाहन करते हैं ॥६,१०८.२॥

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥६,१०८.३॥

ऋभुदेव जिस बुद्धि को जानते हैं । दानवों में जो बुद्धि है । ऋषियों में जो कल्याणकारी बुद्धि हैं। उस मेधा को हम साधक में स्थापित करते हैं ॥६,१०८.३॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥६,१०८.४॥

मंत्र द्रष्टा ऋषिगण एवं पृथ्वी आदि भूतों की रक्षा करने वाले कश्यप, कौशिक आदि बुद्धिमान्, जिस मेधा के ज्ञाता हैं। हे अग्निदेव ! आप हमें उस मेधा से युक्त कर मेधावी बनाएँ ॥६,१०८.४॥

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥६,१०८.५॥

हम प्रातःकाल, मध्याह्नकाल एवं सायंकाल में मेधा देवी की सेवा करते हैं । सूर्य रश्मियों के साथ स्तुतियों द्वारा हम मेधाशक्ति को धारण करते हैं ॥६,१०८.५॥

सूक्त १०९ – पिप्पलीभैषज्य सूक्त

पिप्वली ओषधि का वर्णन

पिप्पली क्षिप्तभेषज्युतातिविद्धभेषजी ।
तां देवाः समकल्पयन्न् इयं जीवितवा अलम् ॥६,१०९.१॥

पिप्पली नामक औषधि क्षिप्त (वातविकार, उन्माद) रोग की औषधि है और महाव्याधि की औषधि भी हैं, जिसकी कल्पना (रचना) देवताओं ने की थी । यह एक औषधि ही जीवन को नीरोग और दीर्घायु प्रदान करने में समर्थ हैं ॥६,१०९.१॥

पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥६,१०९.२॥

अपने जन्म से पूर्व, आते समय पिपलियों ने बताया था कि जीवित प्राणी (मनुष्यादि) जिस किसी को भी हमें औषधि रूप खिलाया जाए, वह नष्ट नहीं होता ॥६,१०९.२॥

असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥६,१०९.३॥

हे पिप्पली औषधे ! तुम वात विकार से पीड़ित एवं हाथ पैर फेकने वाले उन्माद रोग की औषधि हो । तुमको प्रथम असुरों ने गढ़ा था, फिर जगत् के हित के लिए देवगणों ने तुम्हारा उद्धार किया हैं ॥६,१०९.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ११० – दीर्घायु सूक्त

अग्नि देव की स्तुति

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥६,११०.१॥

पुरातनकाल से आप (यज्ञों में) देवों का आवाहन करने वाले और यजन करने वाले हैं । हे अग्निदेव ! आप अभिनव होतारूप से वेदी पर प्रतिष्ठित होकर हमें पूर्ण सुख, सौभाग्य और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६,११०.१॥

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात्परि पाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥६,११०.२॥

हे अग्निदेव ! आप इस (जातकको ज्येष्ठानक्षत्र के हानिकारक तथा मूलनक्षत्र के घातक प्रभावों से बचाएँ। इस

(इन नक्षत्रों में जन्में बालकों को यम के संहारक दोषों से मुक्त करें और शतायु बनाएँ ॥६,११०.२॥

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत्पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम्
॥६,११०.३॥

क्रूर नक्षत्र वाले दिन में उत्पन्न यह बालक दूसरों को सुख देने वाला, वीर-पराक्रमी बने । बड़ा होने पर यह अपनी जन्म देने वाली माता एवं पालक पिता को हर प्रकार से सुख प्रदान करे ॥६,११०.३॥

सूक्त १११- उन्मत्ततामोचन सूक्त

अग्नि की स्तुति

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद्भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥६,१११.१॥

है अग्निदेव ! यह पुरुष पापों से उत्पन्न रोगरूप बन्धनों से बँधा हुआ उन्माद रोग के कारण प्रलाप कर रहा है, कृपा कर आप इसे रोग और कारणरूप पापों से मुक्त करें । यह आपका भाग (हवि) औरअधिक देने वाला हो ॥६,१११.१॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥६,१११.२॥

हे गन्धर्वग्रह से जकड़े हुए पुरुष ! तुम्हें अग्निदेव उन्माद मुक्त करें। तुम्हारे उद्भ्रान्त मन को शान्त एवं स्थिर करने

के लिए हम उन औषधियों का प्रयोग करते हैं, जिनका हमें ज्ञान है ॥६,१११.२॥

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥६,१११.३॥

किए गए दैवी अथवा राक्षसी पापों के फलस्वरूप उत्पन्न उन्माद को शान्त करने की औषधि को हम जानते हैं। हम उन्हीं औषधियों का प्रयोग करते हैं, जिससे तुम्हारा चित्त भ्रमरहित अर्थात् स्थिर हो जाए ॥६,१११.३॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥६,१११.४॥

हे पुरुष ! अप्सराओं ने तुम्हें रोगमुक्त कर दिया है । भग एवं इन्द्रदेव सहित समस्त देवों ने तुम्हें रोगमुक्त कर लौटा दिया है ॥६,१११.४॥

सूक्त ११२- पाशमोचन सूक्त

अग्नि की स्तुति

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात्परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥६,११२.१॥

हे अग्निदेव ! यह अपने से बड़ों का संहारक न बने, असत्य इसे मूलोच्छेदन दोष से मुक्त करे । हे देव ! आप दोष से मुक्त करने के उपाय जानते हैं । आप इसे जकड़ने वाली शक्ति के बन्धनों से मुक्त करें । इस निमित्त समस्त देवता आपको विमुक्त करने की अनुज्ञा दें ॥६,११२.१॥

उन् मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता यहभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥६,११२.२॥

हे अग्निदेव !आप उन पाशों से मुक्त करें, जिन तीन पाशों के द्वारा इस दूषित पुरुष के तीनों अपने (माता-पिता और पुत्र) बँधे हैं; क्योंकि आप पाशों से मुक्त करने के उपायों को जानते हैं ॥६,११२.२॥

यहभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च । वि ते मुच्यन्तं विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥६,११२.३॥

जिन पाशों के द्वारा ज्येष्ठ भाई से पूर्व विवाह करने वाला बाँधा गया है। उसका प्रत्येक अङ्ग जिन बन्धनों से जकड़ा है । पाशों को खोलने वाले हे अग्निदेव ! आप इसके पाशों को खोलें एवं पाशों के मूल कारण 'पाप' को भ्रूण (अथवा श्रोत्रियों की हत्या करने वाले में आरोपित करें ॥६,११२.३॥

सूक्त ११३ – पापनाशन सूक्त

पूषा देव की स्तुति

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन् मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥६,११३.१॥

इस परिवित्त पाप को देवताओं (अथवा इन्द्रियों) ने पहले त्रित (मन-बुद्धि एवं चित्त) में रखा । त्रित (मन) ने इसको मनुष्यों (की काया) में आरोपित किया । उस पाप से उत्पन्न रोग (गठिया) आदि ने तुम्हें जकड़ लिया है, तो देवतागण मन्त्रों के द्वारा तुम्हारी उस पीड़ा को दूर करें ॥६,११३.१॥

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्न् उदारान् गछोत वा नीहारान् ।
नदीनं फेनामनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥६,११३.२॥

हे पाप्मन् ! तुम सूर्य किरणों में, धुएँ में, वाष्परूप मेघों में, कुहरा अथवा नदी के फेन में प्रविष्ट होकर छिप जाओ । हे पूषा देव ! आप इस पाप को भ्रूण (अथवा श्रोत्रियों की हत्या करने वाले में आरोपित करें ॥६,११३.२॥

द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥६,११३.३॥

त्रित का वह पाप तीन स्थानों से बारह स्थानों (दस इन्द्रियों तथा चिन्तन एवं स्वभाव आदि) में आरोपित हुआ है। वहीं पाप मनुष्य में प्रविष्ट हो जाता है । हे पुरुष ! तुम्हें यदि पापजनित रोग आदि ने जकड़ रखा है, तो देवगण उस रोग आदि को मन्त्रों (ज्ञानालोकों द्वारा विनष्ट करें ॥६,११३.३॥

सूक्त ११४- उन्मोचन सूक्त

अग्नि और अदिति पुत्र देवों की प्रशंसा

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृम वयम् ।
आदित्यास्तस्मान् नो युयमृतस्य ऋतेन मुञ्चत ॥६,११४.१॥

जिसे पाप को हम जाने या अनजाने में कर चुके हैं, जिसके कारण देवता क्रोधित हैं, हे देवताओ ! आप हमें यज्ञ सम्बन्धी सत्य के द्वारा उस पाप से बचाएँ ॥६,११४.१॥

ऋतस्य ऋतेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद्यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥६,११४.२॥

हे देवताओ ! जिस पाप के कारण हम यज्ञ करने की इच्छा होने पर भी यज्ञ करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। आप यज्ञ के सत्य और परम सत्यरूप ब्रह्म के द्वारा हमें उस पाप से मुक्त करें ॥६,११४.२॥

मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥६,११४.३॥

हे विश्वेदेव ! हम घृताहुति द्वारा जो यज्ञकर्म करना चाहते हुए भी पापवश उसे नहीं कर पा रहे हैं, हे देवगणो ! आप हमें उस पाप से मुक्त करें ॥६,११४.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ११५ – पापमोचन सूक्त

विश्वे देव की स्तुति तथा पाप से छुटकारे का आग्रह

यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान् मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥६,११५.१॥

हे विश्वेदेवो जाने-अनजाने हुए पापों से आप हमें बचाएँ । कृपा करके आप हमारे सब प्रियजनों को बचाएँ ॥६,११५.१॥

यदि जाग्रद्यदि स्वपन्न् एन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद्भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥६,११५.२॥

जाग्रत् अथवा स्वप्नावस्था में हमने अज्ञानवश जिन पापों को किया है, उनसे हमें उसी प्रकार मुक्त कर दें, जिस प्रकार काष्ठ के बँटे से बँधे पशु के पैर को मुक्त करते हैं ॥६,११५.२॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥६,११५.३॥

जिस प्रकार पशु बन्धनमुक्त होता है या स्नान के बाद मनुष्य मलादि से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है या पवित्र करने के साधन छाननी आदि के द्वारा घृत पवित्र होता है, उसी प्रकार समस्त देवगण हमें पाप से मुक्त करें ॥६,११५.३॥

सूक्त ११६ – मधुमदन्न सूक्त

विवस्वान की स्तुति तथा क्रोध के शांत होने की कामना

यद्यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥६,११६.१॥

कृषि कार्य करने वाले लोग भूमि जोतने सम्बन्धी जिन नियमों को क्रियान्वित करते रहे, उसी कृषि विद्या के द्वारा अन्नवान् हों। उस अन्न को हम वैवस्वत् के निमित्त हविरूप में अर्पित करते हैं। अब हमारा अन्न यज्ञ के योग्य एवं मधुर हो ॥६,११६.१॥

वैवस्वतः कृणवद्भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद्वा पिताऽपराद्धो जिहीडे ॥६,११६.२॥

वैवस्वतुदेव अपने निमित्तप्रदान किए गए हविर्भाग को ग्रहण करें । हवि के मधुर भाग से प्रसन्न होकर वह हमें मधुर अन्न प्रदान करें माता-पिता का द्रोह करने से जो पाप हम अपराधियों को मिला है, वह शान्त हो जाए ॥६,११६.२॥

यदीदं मातुर्यदि पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥६,११६.३॥

माता-पिता अथवा भाई के प्रति किए गए अपराध से प्राप्त यह दण्डरूप पाप शान्त हो एवं जिन पितरों से इसका सम्बन्ध है, उनका मन्यु (सुधारात्मक रोष) हमारे लिए हितप्रद सिद्ध हो ॥६,११६.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त ११७ – आनृण्य सूक्त

अग्नि की स्तुति तथा ऋण की वापसी

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य यहन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान्
॥६,११७.१॥

जिस ऋण को वापस करना चाहिए, उसे वापस न करने के कारण मैं ऋणी हुआ हूँ। इस बलवान् ऋण के कारण यमराज के वश में भ्रमण करूगा । हे अग्निदेव ! आप ऋण के कारण होने वाले पारलौकिक पाशों से मुक्त करने के ज्ञाता हैं । अतएव आपकी कृपा से मैं ऋणरहित हो जाऊँ ॥६,११७.१॥

इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत्।
अपमित्य धान्यं यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि
॥६,११७.२॥

इस लोक में रहते हुए मृत्यु के पूर्व ही मैं उस ऋण का भुगतान करती हूँ। हे अग्निदेव ! मैंने जो धान्य ऋण लेकर खाया है, वह यह है । मैं आपकी कृपा से उस ऋण से मुक्त होता हूँ ॥६,११७.२॥

अनृणा अस्मिन्न् अनृणाः परस्मिन् तृतीयह लोके अनृणाः स्याम ।
यह देवयानाः पितृयाणश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियहम ॥६,११७.३॥

हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से हम इस लोक में ऋणमुक्त हों, परलोक में ऋणमुक्त हों तथा तृतीय लोक में ऋणमुक्त हों । देवयान और पितृयान मार्गों में एवं समस्त लोकों में हम उऋण होकर रहें ॥६,११७.३॥

सूक्त ११८ – अनृण्य सूक्त

उग्रंपश्या एवं उग्रजिता अप्सराओं की स्तुति तथा पाप ऋण से मुक्ति की कामना

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥६,११८.१॥

हस्त-पादादि इन्द्रियों के द्वारा जो पाप हो गया है तथा इन्द्रिय-लिप्सा की पूर्ति के लिए जो ऋण लिया है, उसे तीक्ष्ण दृष्टि वाली 'उग्रंपश्या' तथा 'उग्रजिता' नामक दोनों अप्सराएँ ऋणदाता को भुगतान कर दें ॥६,११८.१॥

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत्।
ऋणान् नो न ऋणमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत्॥६,११८.२॥

हे उग्रपश्या और राष्ट्रभृत् (राष्ट्र का भरण-पोषण करने वाली) अप्सराओ ! जो पाप हमसे हो चुके हैं। जो पाप इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्त होने से हुए हैं। उनका आप इस प्रकार निवारण करें, जिससे वह हमें पीड़ित न करें ।आप हमें ऋणमुक्त करें। जिससे यमलोक में ऋणदाता हमें पाश से कष्ट न दें ॥६,११८.२॥

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥६,११८.३॥

जिससे वस्त्र, सुवर्णादि के लिए ऋण ले रहा हूँ और जिसकी भार्या के पास याचना करने के लिए जाता हूँ, हे देवो ! वह हमसे (अनुचित) वचन न बोलें । हे देवपत्नियो ! हे अप्सराओ ! आप मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥६,११८.३॥

सूक्त ११९ – पाशमोचन सूक्त

वैश्वानर अग्नि की स्तुति तथा लौकिक और दैविक ऋणों रूपी बंधनों को ढीला करने की प्रार्थना

यददीव्यन्न् ऋणमहं कृणोम्यदास्यन्न् अग्ने उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन् नयाति सुकृतस्य लोकम्
॥६,११९.१॥

ऋण देने की इच्छा रहने पर एवं चुकता करने का वचन देने पर भी ऋण देने में असमर्थ रहा। समस्त प्राणियों के हितैषी एवं सबको बसाने वाले अधिपति हे अग्निदेव ! आप हमें इस दोष से बचाएँ एवं पुण्यलोक में हमें श्रेष्ठ गति प्रदान करें ॥६,११९.१॥

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यदि ऋणं संगरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वान् अथ पक्केन सह सं भवेम
॥६,११९.२॥

लौकिक (समाज) ऋण एवं देवत्रण से उण होने का संकल्प मैं वैश्वानर अग्निदेव को समर्पित करता हूँ, वह अग्निदेव सम्पूर्ण ऋणात्मक पाशों (बन्धनों) को खोलना जानते हैं। वह हमें बन्धनमुक्त करके परिपक्व (सत्कर्मों के परिणाम स्वरूप) स्वर्ग प्राप्त कराएँ ॥६,११९.२॥

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत्संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत्तत्रैनो अप तत्सुवामि ॥६,११९.३॥

सबको पवित्र करने वाले वैश्वानर अग्निदेव हमें पवित्र करें। मैं ऋण चुकाने की केवल प्रतिज्ञा बार-बार करता रहा हूँ। अज्ञानवश ऐहिक सुख की आशाएँ करता रहा हूँ और मन से उन्हीं की याचना करता रहा हूँ। ऐसे असत्य व्यवहार से जो पाप उत्पन्न हुए हों, वह सब दूर हों ॥६,११९.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १२० – सुकृतलोक सूक्त

अग्नि की स्तुति, पृथ्वी, अदिति, अंतरिक्ष तथा आकाश का वर्णन तथा स्वर्ग में अपने माता, पिता तथा पूत्रों से मिलने की कामना

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन् मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन् नयाति सुकृतस्य लोकम्
॥६,१२०.१॥

द्यु, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के प्राणियों के प्रति और माता-पिता के प्रति कष्टकारक व्यवहार के कारण हमसे जो पाप हो गए हैं, इन पापों से यह गार्हपत्य अग्निदेव हमारी रक्षा करें और हमें पुण्यलोक में श्रेष्ठ गति प्रदान करें ॥६,१२०.१॥

भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात्॥६,१२०.२॥

पृथ्वी माती हमारी जन्मदात्री है । यह देवमाता अदिति के समान पूज्य है । अन्तरिक्ष हमारे भाई और द्‌युलोक हमारे पिता के समान हैं। यह सब हमें पापों से बचाएँ एवं हमारा कल्याण करने वाले सिद्ध हों । हम निषिद्ध स्त्री के साथ पापयुक्त व्यवहार करके लोकभ्रष्ट न हों ॥६,१२०.२॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोना अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥६,१२०.३॥

श्रेष्ठ हृदय वाले, यज्ञादि पुण्यकर्म करने वाले, अपने शारीरिक रोगों से मुक्त होकर उत्तम गति को प्राप्त करें। अंगों के विकार से मुक्त होकर सहज, सरल जीवनयापन करते हुए स्वर्गादिक श्रेष्ठ लोकों में रहते हुए अपने आत्मीय पितरों एवं पुत्रों को देखें ॥६,१२०.३॥

सूक्त १२१ – सुकृतलोकप्राप्ति सूक्त

बंधन के देवता निर्ऋति की स्तुति तथा बंधनों से मुक्ति की कामना

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद्य उत्तमा अधमा वारुणा यह । दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गछेम सुकृतस्य लोकम् ॥६,१२१.१॥

बन्धनों की अधिष्ठात्री हे निति देवि ! आप वरुणदेव के उत्तम, मध्यम एवं अधम पाशों को तोड़ते हुए हमें मुक्त करें । दुःस्वप्न और पापों को दूर करके हमें स्वर्गलोक तक पहुँचाएँ ॥६,१२१.१॥

यद्दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद्भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा । अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन् नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥६,१२१.२॥

हे पुरुष ! जो तुम काष्ठस्तम्भ और रस्सी से बाँधे जाते हो । जो भूमि में बाँधे जाते हो और जो वाणी (वचनों) द्वारा बाँधे

जाते हो, ऐसे समस्त बन्धनों से यह गार्हपत्य अग्निदेव मुक्त करके स्वर्गलोक तक पहुँचाएँ ॥६,१२१.२॥

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
प्रेहामृतस्य यछतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥६,१२१.३॥

भगवती (ऐश्वर्ययुक्त) तथा विवृत (अंधकार नाशक) दो तारिकाएँ अथवा शक्तियाँ हमें मृत्यु से मुक्त करें, जिससे यह बद्ध पुरुष (जीव) बन्धन से मोक्ष को प्राप्त करे ॥६,१२१.३॥

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान् मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वामनु क्षिय ॥६,१२१.४॥

(हे देव) आप विविध प्रकार से प्रगति करके बन्धन में जकड़े आर्त पुरुष को बन्धनमुक्त करें । हे पुरुष ! तुम बन्धन से मुक्त होकर गर्भाशय से बाहर आए शिशु के समान स्वतन्त्र होकर सर्वत्र विचरण करो ॥६,१२१.४॥

सूक्त १२२ – तृतीयनाक सूक्त

विश्वकर्मा की स्तुति तथा अग्नि की स्तुति इंद्र से अभिलाषा पूरी करने की कामना

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादछिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥६,१२२.१॥

हे समस्त जगत् के रचयितादेव ! आप सर्वप्रथम प्रकट हुए हैं। हम आपकी महिमा को जानते हुए, इस पक्क हवि को अपनी रक्षा के लिए आपको अर्पित करते हैं । यज्ञीय प्रक्रिया के इस अविच्छिन्न सूत्र का अनुसरणकरके हम वृद्धावस्था के पश्चात् भी पार हो जाएँगे-सद्गति पा जाएँगे ॥६,१२२.१॥

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति यहषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयछन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥६,१२२.२॥

कई लोग इस फैले हुए (जीवन में स्थान पाने वाले) यज्ञीय सूत्रों का अनुसरण करके तर जाते हैं। जिनके आने (धारण किए जाने) से पितृ-ऋण चुक जाता है । बन्धुरहित व्यक्ति भी पैत्रिक धनादि का दान कर ऋण-मुक्त होते हैं और स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥६,१२२.२॥

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तयह दम्पती सं श्रयहथाम्
॥६,१२२.३॥

हे दम्पति ! परलोक के हित को लक्ष्य में रखकर सत्कर्म प्रारम्भ करो, उसमें सतत लगे रहो । सत्कर्म के श्रेष्ठ फल को श्रद्धायुक्त आस्तिक जन ही प्राप्त करते हैं। तुम भी ब्राह्मण को देने वाला पक्कान्न और अग्निदेवको अर्पित किया जाने वाला हविरूप अन्न दान करके श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करो ॥६,१२२.३॥

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।

उपहूता अग्ने जरसः परस्तात्तृतीयह नाके सधमादं मदेम ॥६,१२२.४॥

हम यज्ञ को तप और मनोयोगपूर्वक करते हुए देवों की ओर प्रगति करते हैं । हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से बुढ़ापे तक श्रेष्ठ कर्म करते हुए हम दुःख – शोकरहित स्वर्गधाम में पहुँचें एवं पुत्र-पौत्रादि को देखकर हर्ष युक्त हों ॥६,१२२.४॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन् मे ॥६,१२२.५॥

शुद्ध-पवित्र यज्ञीय योषाओं (आहुतियों या विधियों) को मैं ब्राह्मण-अत्विजों के हाथों में पृथक्-पृथक् सौंपता हूँ। जिस कामना से मैं आप लोगों को अभिषिक्त (नियुक्त) करता हूँ, वह फल मुझे मरुद्गणों सहित इन्द्रदेव की कृपा से प्राप्त हो ॥६,१२२.५॥

सूक्त १२३ – सौमनस्य सूक्त

स्वर्ग में विराजमान देवों की स्तुति, पितरों का वर्णन, यज्ञ करना और दान देना तथा सोम से स्वर्ग में स्थित रहने की प्रार्थना

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदः ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन्
॥६,१२३.१॥

हे साथ रहने वाले देवताओ ! हम आपको निधि (हवि) का भाग अर्पित करते हैं, जिसे जातवेदा अग्निदेव आप तक पहुँचाते हैं । यह यजमान हवि अर्पण करने के बाद ही स्वर्गलोक में आएगा, आप उसे भूलना नहीं ॥६,१२३.१॥

जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै
॥६,१२३.२॥

हे सासाथ रहने वाले देवताओ ! परम व्योम-स्वर्गलोक में इस यजमान का श्रेष्ठ कर्मानुसार-स्थान सुनिश्चित कर दें । यह यजमान हवि अर्पित करके कुशलतापूर्वक वहाँ पहुँचेगा, तब इसे भूले बिना इष्टापूर्त का फल प्रदान करें ॥६,१२३.२॥

देवाः पितरः पितरो देवाः ।
यो अस्मि सो अस्मि ॥६,१२३.३॥

जो पालन करते हैं, वह देव हैं । दैवी गुण एवं भावयुक्त पूजनीय ही हमारे पालनकर्ता हैं ।मैं जो हूँ, वही हूँ ॥६,१२३.३॥

स पचामि स ददामि ।
स यजे स दत्तान् मा यूषम् ॥६,१२३.४॥

मैं यज्ञ के लिए अन्न पकाता हूँ,हवि का दान एवं यज्ञ करता हूं, ऐसे यज्ञों के फल से मैं पृथक् न होऊँ ॥६,१२३.४॥

नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु ।

विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥६,१२३.५॥

हे राजा सोम ! हमारे अपराधों को क्षमा करके आप स्वर्गलोक में हमें सुख प्रदान करें । हे स्वामिन् ! आप हमारे कर्म फलों को जानकर प्रसन्न मन से हमें सुख प्रदान करें ॥६,१२३.५॥

सूक्त १२४ – नित्यपस्तरण सूक्त

अग्नि की स्तुति तथा जल वृक्ष का फल ही है

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद्रसेन ।
समिन्द्रियहन पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥६,१२४.१॥

विशाल द्युलोक से दिव्य अप् (जल या तेज) युक्त रस की बूंदें हमारे शरीर पर गिरी हैं। हम इन्द्रियों सहित, दुग्ध के समान सारभूत अमृत से एवं छन्दों (मन्त्रों) से सम्पन्न होने वाले यज्ञों के पुण्यफल से युक्त हों ॥६,१२४.१॥

यदि वृक्षादभ्यपप्तत्फलं तद्यद्यन्तरिक्षात्स उ वायुरेव ।
यत्रास्पृक्षत्तन्वो यच्च वाससं आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥६,१२४.२॥

वृक्ष के अग्रभाग से गिरी वर्षा की जल बूंद, वृक्ष के फल के समान हीं है। अन्तरिक्ष से गिरा जल बिन्दु निर्दोष वायु फल के समान है । शरीर अथवा पहिने वस्त्रों पर उसका स्पर्श हुआ है, वह प्रक्षालनार्थ प्रयुक्त जल के समान निति देव (पापों को) को हम से दूर करें ॥६,१२४.२॥

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव ।
सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत्तन् मा तारीन् निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥६,१२४.३॥

(यह अमृत वर्षा) उबटन, सुगंधित द्रव्य, चन्दन, आदि सुवर्ण धारण तथा वर्चस् की तरह समृद्धि रूप है । यह पवित्र करने वाला है । इस प्रकार पवित्रता का आच्छादन होने के कारण पापदेवता और शत्रु हमसे दूर रहें ॥६,१२४.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १२५ – वीर-रथ सूक्त

वनस्पति की स्तुति तथा वृक्ष से प्राप्त रस का वर्णन तथा दिव्य गुणों से युक्त रसों की तुलना

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥६,१२५.१॥

वनस्पति (काष्ठ) निर्मित हे रथ ! आप हमारे मित्र होकर मजबूत अंग तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से सम्पन्न होकर संकटों से हमें पार लगाएँ । आप श्रेष्ठ कर्म द्वारा बँधे हुए हैं, इसलिए वीरतापूर्वक कार्य करें। हे रथ ! आपका सवार जीतने योग्य समस्त वैभव को जीतने में समर्थ हो ॥६,१२५.१॥

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥६,१२५.२॥

हे अध्वर्यो ! पृथ्वी और सूर्यलोक से ग्रहण किए गए तेज, वनस्पतियों से प्राप्त बल तथा जल से प्राप्त ओज युक्त रस को नियोजित करें ।सूर्य किरणों से आलोकित वज्र के समान सुदृढ़ रथ को यजन कार्य में समर्पित करें ॥६,१२५.२॥

इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥६,१२५.३॥

हे दिव्य रथ ! आप इन्द्रदेव के वज्र तथा मरुतों की सैन्यशक्ति के समान सुदृढ़ एवं मित्रदेव के गर्भरूप आत्मा तथा वरुणदेव की नाभि के समान हैं। हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्न को प्राप्त कर तृप्त हों ॥६,१२५.३॥

सूक्त १२६ – दुन्दुभि सूक्त

दुंदुभि की स्तुति, दुंदुभि से बल को बढ़ाने के लिए प्रार्थना तथा इंद्र की प्रशंसा

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून्
॥६,१२६.१॥

हे दुंदुभे ! आप अपनी ध्वनि से भू तथा द्युलोक को गुंजायमान करें, जिससे जंगम तथा स्थावर जगत् के प्राणी आपको जानें आप इन्द्र तथा दूसरे देवगणों से प्रेम करने वाले हैं, अतः हमारे शत्रुओं को हमसे दूर हटाएँ ॥६,१२६.१॥

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुछुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व
॥६,१२६.२॥

हे दुंदुभे ! आपकी आवाज को सुनकर शत्रु-सैनिक रोने लगें । आप हमें तेजस् प्रदान करके हमारे पापों को नष्ट करें। आप इन्द्रदेव की मुष्टि के समान सुदृढ़ होकर हमें मजबूत करें तथा हमारी सेना के समीप स्थित दुष्ट शत्रुओं का पूर्णरूपेण विनाश करें ॥६,१२६.२॥

प्रामूं जयाभीमे जयन्तु केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥६,१२६.३॥

हे इन्द्रदेव ! उद्घोष करके आप दुष्टों की सेनाओं को भली प्रकार दूर भगाएँ । हमारी सेना विजय उद्घोष करती हुई लौटे। हमारे द्रुतगामी अश्वों के साथ वीर रथारोही घूमते हैं, वह सब विजयश्री का वरण करें ॥६,१२६.३॥

सूक्त १२७ – यक्ष्मनाशन सूक्त

विसर्प व्याधि तथा पीपुद्र नाम की औषधि का वर्णन

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्यौषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥६,१२७.१॥

हे औषधे ! तुम कफ, क्षय, फोड़े-फुसी, श्वास-खाँसी में रक्त गिरना आदि रोगों को नष्ट करो । तुम त्वचा के विकारों एवं मांस में उत्पन्न विकारों को नष्ट करो ॥६,१२७.१॥

यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥६,१२७.२॥

हे कास श्वासयुक्त बलास रोग ! काँख में उत्पन्न दो गिल्टियाँ तुम्हारे कारण हैं । मैं उसकी औषधि को जानता हूँ । चीपुद्र (औषधि विशेष जो आजकल ज्ञात नहीं) उसे समूल नष्ट करती है ॥६,१२७.२॥

यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥६,१२७.३॥

नाड़ियों के मुख से अनेक प्रकार से फैलकर जो विसर्पक रोग हाथ, पैर, आँख, कान आदि तक पहुँच जाता है, उसे तथा विद्रध नामक व्रण को, हृदय रोग को, गुप्त यक्ष्मा रोग को तथा निम्नगामी रोग को मैं औषधियों द्वारा वापस लौटा (प्रभावहीन कर) देता हूँ ॥६,१२७.३॥

सूक्त १२८ – राजा सूक्त

शंकधूम और चंद्रमा की स्तुति

शकधूमं नक्षत्राणि यद्राजानमकुर्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन् इदं राष्ट्रमसादिति ॥६,१२८.१॥

नक्षत्रों ने शकधूम (अग्नि विशेष) को राजा बनाया; क्योंकि वह चाहते थे कि यह नक्षत्र मण्डल का राज्य उन्हें शुभ दिवस में प्राप्त हो ॥६,१२८.१॥

भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥६,१२८.२॥

प्रात:काल, मध्याह्नकाल एवं सायंकाल हमारे लिए पुण्यदायक हो तथा रात्रि का समय भी हमारे लिए शुभ हो ॥६,१२८.२॥

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सुर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजन् छकधूम त्वं कृधि ॥६,१२८.३॥

हे नक्षत्र मण्डल के राजा शकधूम ! आप दिन और रात्रि, नक्षत्रों, सूर्य एवं चन्द्र को हमारे लिए शुभप्रद करें ॥६,१२८.३॥

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥६,१२८.४॥

हे शकधूम ! आपने सायंकाल, रात्रि एवं दिन आदि 'काल' हमारे लिए पुण्यप्रद किए हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥६,१२८.४॥

सूक्त १२९ – भगप्राप्ति सूक्त

भग देव की प्रशंसा

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना ।
कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥६,१२९.१॥

शांशप वृक्ष के(अथवा शान्तिपूर्ण) ऐश्वर्य के समान आनन्ददायी इन्द्रदेव के द्वारा मैं अपने आपको भाग्यशाली बनाता हूँ। हमारे शत्रु हमसे दूर रहें ॥६,१२९.१॥

यहन वृक्षामभ्यभवो भगेन वर्चसा सह ।
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥६,१२९.२॥

हे औषधे ! तुम भग देवता के तेज के साथ हमें संयुक्त करके सौभाग्यशाली बनाओ। हमारे शत्रु हमसे दूर रहें ॥६,१२९.२॥

यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः ।

तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥६,१२९.३॥

(हे देव !) जो अन्न और जो गतिशील ऐश्वर्य वृक्षों (औषधि) में स्थित हैं, उसके प्रभाव से आप हमें सौभाग्यशाली बनाएँ। हमारे शत्रु हमसे विमुख होकर दूर चले जाएँ ॥६,१२९.३॥

सूक्त १३० – स्मर सूक्त

माष नाम की जड़ीबूटी का वर्णन तथा मरुद्गण और अग्नि देव की स्तुति

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥६,१३०.१॥

यह काम (कामासक्त स्वभाव) रथ (मनोरथ) से जीतने वाली अप्सराओं एवं रथ द्वारा जीती गई अप्सराओं का है । हे देवताओ ! आप इस 'काम' को हमसे दूर करें । हमें पीड़ित ने कर सकने के कारण वह शोक करे ॥६,१३०.१॥

असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥६,१३०.२॥

यह मुझे स्मरण करे । हमारा प्रिय हमें स्मरण करे । हे देवताओ ! आप इस 'काम' को हमसे दूर करें, जिससे यह हमें पीड़ित न कर पाने से शोक करे ॥६,१३०.२॥

यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥६,१३०.३॥

यह हमारा स्मरण करे, परन्तु हमें इसका कभी ध्यान भी न आए। हे देवताओ ! आप इस 'काम' को हमसे दूर करें । यह हमारे लिए शोक करे ॥६,१३०.३॥

उन् मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।
अग्न उन् मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥६,१३०.४॥

हे मरुतो ! उन्मत्त करो। हे अन्तरिक्ष ! उन्मत्त करो। हे अग्निदेव ! आप उन्मत्त करें । वह काम (हमें उन्मत्त न कर पाने के कारण) शोक करे ॥६,१३०.४॥

सूक्त १३१ – स्मर सूक्त

संकल्प की देवी आकृति की प्रशंसा

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो नि तिरामि ते ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥६,१३१.१॥

जो तेरी व्यथाएँ सिर से एवं पैर से आई हैं, उन्हें मैं दूर करता हूँ । हे देवताओ ! आप काम को हमसे दूर करें । वह मुझे प्रभावित न कर सके ॥६,१३१.१॥

अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकुते समिदं नमः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥६,१३१.२॥

हे अनुमते ! आप इस (प्रार्थना) को अनुकूल मानें । हे आकूते ! आप मेरी इन विनम्रता से प्रसन्न हों । हे। देवताओ ! आप कामविकार को हमसे दूर करें । वह मुझे प्रभावित न कर सके ॥६,१३१.२॥

यद्धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् ।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥६,१३१.३॥

जो बारह कोस अथवा बीस कोस (१कोस = २मील) अथवा इससे भी आगे घोड़े की सवारी से पहुँच सकने योग्य दूरी से यहाँ वापस आते हैं । हे देव ! ऐसे आप हमारे पुत्रों के पिता हैं ॥६,१३१.३॥

सूक्त १३२ – स्मर सूक्त

देवों द्वारा कामदेव तथा उनकी पत्नी आधि को जल में डबोया जाना

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्न् अप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥६,१३२.१॥

समस्त देवताओं ने जगत् के प्राणियों को काम – पीड़ित करने के लिए जल से सींचा था। मैं वरुणदेव की धारणा शक्ति के द्वारा कामविकार को संतप्त करता हूँ ॥६,१३२.१॥

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्न् अप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥६,१३२.२॥

विश्वेदेवा ने जिस काम को जल में अभिषिक्त किया, मैं वरुण की शक्ति के द्वारा काम को संतप्त करता हूँ ॥६,१३२.२॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥६,१३२.३॥

इन्द्राणी ने काम को मानसिक पीड़ा देने के लिए जल में अभिषिक्त किया । हे योषित् ! आपके कल्याण के लिए वरुणदेव की शक्ति से मैं उसे शान्त करता हूँ ॥६,१३२.३॥

यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥६,१३२.४॥

इन्द्रदेव और अग्निदेव द्वारा जल में अभिषिक्त काम को हम वरुणदेव की धारणा शक्ति से संतप्त करते हैं॥६,१३२.४॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥६,१३२.५॥

मित्रावरुणदेव ने मनोवेग रूप काम को जल से अभिषिक्त किया था, उस काम को मैं संतप्त करता हूँ ॥६,१३२.५॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १३३ – मेखलाबन्धन सूक्त

शत्र को मारने के लिए बांधी जाने वाली मेखला का वर्णन तथा शत्रु के विनाश हेतु यमराज से प्रार्थना

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिछात्स उ नो वि मुञ्चात्॥६,१३३.१॥

देवताओं ने इस मेखला को बाँधा है, जो हमें सदैव कर्म करने के लिए तत्पर रखती है तथा कर्म में लगाती है। हम जिन देवताओं के अनुशासन में रहते हुए कार्य-व्यवहार कर रहे हैं। वह हमें सफल होने का आशीर्वाद प्रदान करें और बन्धनों से मुक्त करें ॥६,१३३.१॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥६,१३३.२॥

हे आहुतियों से संस्कारित मेखले ! तुम ऋषियों की आयुध हो । तुम किसी व्रत के पूर्व बाँधी जाती हो। तुम शत्रुओं के योद्धा को मारने वाली हो ॥६,१३३.२॥

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात्पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥६,१३३.३॥

मैं वैवस्वत् यम का कर्म करने वाला बनता हूँ ; क्योंकि मैं ब्रह्मचर्य व्रत (तप,दम,शम) एवं विशेष दीक्षा नियमों का पालन करने वाला हूँ । व्रत-भंग करने वाले शत्रुओं को मैं अपने अभिचार कर्म द्वारा नष्ट करूंगा । इस मेखला बन्धन से मैं शत्रुओं की आक्रामक गति को रोकता हूँ ॥६,१३३.३॥

श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥६,१३३.४॥

यह मेखला (मर्यादा) श्रद्धा की पुत्री एवं तपः शक्ति से उत्पन्न है। यह पदार्थों के निर्माता ऋषियों की बहन है। हे मेखले ! तुम हमें उत्तम भविष्य निर्माण के लिए सुमति एवं धारण-शक्तिसम्पन्न सद्बुद्धि प्रदान करो तथा तपः शक्ति एवं आत्मबल सम्पन्न बनाओ ॥६,१३३.४॥

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥६,१३३.५॥

हे मेखले ! तुम्हें भूतों के निर्माता आदि ऋषियों ने बाँधा था। अतः तुम अभिचार दोष का नाश कर दीर्घायु के लिए मुझसे बँधों ॥६,१३३.५॥

सूक्त १३४ – शत्रुनाशन सूक्त

वज्र का वर्णन तथा स्तुति

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः ॥६,१३४.१॥

इन्द्रदेव के वज्र के समान यह दण्ड भी शत्रुओं को रोकने एवं उनके राज्य को नष्ट करने में समर्थ हो । जिसे प्रकार इन्द्रदेव ने वृत्रासुर के गले को एवं भुजाओं को काटा था, वैसे ही यह दण्ड शत्रु को नष्ट करे ॥६,१३४.१॥

अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत्।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥६,१३४.२॥

(वह शत्रु) उत्कृष्टों से नीचे तथा और भी नीचे होकर पृथ्वी में छिपकर रहे या गड़ जाए, पुनः ऊपर न उठे ॥६,१३४.२॥

यो जिनाति तमन्विछ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥६,१३४.३॥

हे वज्र ! तुम शत्रुओं को खोजकर मारो एवं उन्हें सीमान्त स्थान पर गिराकर नष्ट कर डालो ॥६,१३४.३॥

सूक्त १३५ – बलप्राप्ति सूक्त

वज्र का वर्णन, स्तुति शत्रु विनाश की प्रार्थना

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे ।
स्कन्धान् अमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥६,१३५.१॥

मैं पौष्टिक अन्न को खाता हूँ, ताकि मेरा बल बढ़े। मैं वज्र धारण करता हूँ और शत्रु के कंधों को उसी प्रकार काटता हूँ, जिस प्रकार इन्द्रदेव वृत्रासुर के कंधों को काटकर अलग करते हैं ॥६,१३५.१॥

यत्पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः ।
प्राणान् अमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥६,१३५.२॥

जिस प्रकार समुद्र, नदी को पीकर अपने में समा लेता है। उसी प्रकार मैं भी जो पीता हूँ, सो ठीक ही पीता हूँ। मैं

पहले शत्रु के प्राण, अपान आदि के रस को पीकर शत्रु को ही पी जाता हूँ ॥६,१३५.२॥

यद्गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणान् अमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥६,१३५.३॥

जो मैं निगलता हूँ, उसे ठीक ही निगलता हूँ । शत्रु के प्राण, अपान, चक्षुरूप आदि रस को निगलता हूँ, फिर बाद में शत्रु को ही निगल जाता हूँ ॥६,१३५.३॥

सूक्त १३६ – केशदृहण सूक्त

कालमाची नामक जड़ीबूटी का वर्णन व स्तति तथा केशों को उत्पन्न करना और दृढ़ बनाना

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥६,१३६.१॥

हे औषधे ! तुम पृथ्वी पर उत्पन्न हुई हो । तिरछी होकर फैलती हुई हे औषधि देवि ! हम आपको अपने केशों को सुदृढ़ करने केलिए, खोदकर संगृहीत करते हैं ॥६,१३६.१॥

दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातान् उ वर्षीयसस्कृधि ॥६,१३६.२॥

हे दिव्यौषधे तुम केशों को लम्बे, सुदृढ़ करो एवं जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उन केशों को उत्पन्न करो ॥६,१३६.२॥

यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।

इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥६,१३६.३॥

तुम्हारे जो केश गिर जाते हैं, जो मूल से टूट जाते हैं, उस दोष को औषधि रस से भिगोकर दूर करते हैं ॥६,१३६.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १३७ – केशवर्धन सूक्त

वनस्पति की प्रशंसा तथा केशों का बढ़ना

यां जमदग्निरखनद्दुहित्रे केशवर्धनीम् ।
तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥६,१३७.१॥

जिन महर्षि जमदग्नि ने अपनी कन्या के केशों की वृद्धि के लिए, जिस औषधि को खोदा, उसे वींतव्य नाम वाले महर्षि, कृष्ण केश नामक मुनि के घर से लाए थे ॥६,१३७.१॥

अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥६,१३७.२॥

हे केश बढ़ाने की इच्छा वाले ! तुम्हारे केश पहले तो अँगुलियों द्वारा नापे जा सकते थे, वह अब ‘व्याम् (दोनों हाथ फैलाने पर जो लम्बाई होती हैं, जितने लम्बे हो गए हैं।

सिर के चारों ओर के काले बाल 'नड़' नाम वाले तृणों के समान शीघ्रता से बढ़े ॥६,१३७.२॥

दृंह मूलमाग्रं यछ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥६,१३७.३॥

हे औषधे ! तुम केशों के अग्रभाग को लम्बा, मध्य भाग को स्थिर एवं मूल भाग को सुदृढ़ करो। 'नड' (नरकट) जैसे नदी के किनारे पर शीघ्रता से बढ़ते हैं, वैसे ही सिर के चारों ओर काले केश बढ़े ॥६,१३७.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १३८ – क्लीबत्व सूक्त

शक्तिहीन करने वाली जड़ीबूटी के द्वारा वीर्यवाहिनी नाड़ियों का नाश

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे ।
इमं मे अद्य पुरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥६,१३८.१॥

हे औषधे ! आप औषधियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इस समय आप हमारे द्वेष – पुरुष को क्लब स्त्री के समान बनाएँ ॥६,१३८.१॥

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥६,१३८.२॥

हे औषधे ! आप हमारे शत्रुओं को क्लीब और स्त्री के समान करें । उनके पुरुषत्व के प्रतीक अंग विशेष को इन्द्रदेव

वज्र से चूर्ण कर दें एवं सिर पर लम्बे केश वाला बनाएँ ॥६,१३८.२॥

क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥६,१३८.३॥

हे शत्रु हमने तुम्हें इस कर्म से क्लीब एवं नपुंसक कर दिया है । हम ऐसे नपुंसक एवं वीर्य शून्य शत्रु के लम्बे केशों में कुरीर एवं कुम्ब (जाल और आभूषण) धारण कराते हैं ॥६,१३८.३॥

यह ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।
ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥६,१३८.४॥

देवताओं द्वारा बनाई गई अण्डकोषों के अधीन जो दोनों वीर्य-वाहिका नलिकाएँ हैं, उनको दण्ड के द्वारा हम भंग करते हैं ॥६,१३८.४॥

यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।
एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥६,१३८.५॥

जिस प्रकार स्त्रियाँ नरकट आदि को पत्थरों से कूटती हैं, वैसे ही हम तेरे अण्डकोषों के प्रभाव को भंग करते हैं ॥६,१३८.५॥

सूक्त १३९ – सौभाग्यवर्धन सूक्त

शंखपुष्पी जड़ीबूटी का वर्णन

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम ।
शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन् नितानाः ॥
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥६,१३९.१॥

हे औषधे ! सौभाग्य को बढ़ाने वाली होकर आप प्रकट होकर हमें सौभाग्यशाली बनाएँ। आपकी सौ शाखाएँ तथा तैंतीस उप शाखाएँ हैं । उस सहस्रपर्णी के द्वारा हम तुम्हारे हृदय को संतप्त करते हैं ॥६,१३९.१॥

शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् ।
अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥६,१३९.२॥

(हे कामिनी !) तुम्हारा हृदय हमारे विषय में चिन्तन करके सूख जाए। हमें काम में शुष्क करके तुम्हारा मुख शुष्क हो तथा तुम सूखे मुख वाली होकर चलो ॥६,१३९.२॥

संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद ।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥६,१३९.३॥

हे औषधे ! आप सौभाग्यदायिनी एवं पीतवर्णी हैं। आप सेवनीय और उत्साहवर्द्धक हैं। आप हम दोनों को आकर्षित करके एक दूसरे के अनुकूल करके हमारे हदयों को अभिन्न कर दें ॥६,१३९.३॥

यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम् ।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥६,१३९.४॥

(हे कामिनी !) जिस प्रकार तृषा से पीड़ित व्यक्ति का मुख सूखता है, उसी प्रकार मुझे प्राप्त करने की कामना से, वियोग ताप से तप्त हुई, सूखे मुँह वाली होकर चलो ॥६,१३९.४॥

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः ।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥६,१३९.५॥

जिस प्रकार नेवला साँप को टुकड़े-टुकड़े काटकर पुनः जोड़ देता है। उसी प्रकार हे वीर्यवती औषधे ! आप वियोगी स्त्री-पुरुष को परस्पर पुनः मिला दें ॥६,१३९.५॥

सूक्त १४०- सुमङ्गलदन्त सूक्त

ब्रह्मणस्पति देव और जातवेद अग्नि की स्तुति

यौ व्याघ्रावववरूधौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
तौ दन्तं ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥६,१४०.१॥

व्याघ्र के समान हिंसक, बढ़े हुए दो दाँत माता और पिता को कष्ट देने वाले हैं। हे मन्त्राधिपति देव ! हे अग्निदेव ! आप उन्हें माता-पिता के लिए सुख प्रदान करने वाला बनाएँ ॥६,१४०.१॥

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् ।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥६,१४०.२॥

हे दाँतो ! तुम चावल, जौ, उड़द एवं तिल खाओ। यह तुम्हारा भाग तुम्हारी तृप्ति के निमित्त प्रस्तुत है। तुम तृप्त होकर माता-पिता को कष्ट देने वाले ने रहो ॥६,१४०.२॥

उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।
अन्यत्र वां घोरं तन्वः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥६,१४०.३॥

यह दोनों दाँत मित्ररूप हों, सुख देने वाले हों । इस बालक के शारीरिक कष्ट को देखकर माता-पिता को जो कष्ट होता है, उस कष्ट से माता-पिता मुक्त हों ॥६,१४०.३॥

सूक्त १४१ – गोकर्णलक्ष्यकरण सूक्त

वायु, त्वष्टा, रुद्र देव आदि की गायों की वृद्धि और चिकित्सा के लिए स्तुति तथा गायों की असीमित वृद्धि के लिए अश्विनीकुमारों की प्रशंसा

वायुरेनाः समाकरत्त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद्रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥६,१४१.१॥

वायुदेव इन गौओं को एकत्रित करें । त्वष्टादेव इन्हें पुष्ट करें । इन्द्रदेव इन्हें स्नेहयुक्त वचन कहें । रुद्रदेव इनकी चिकित्सा करें और इन्हें बढ़ाएँ ॥६,१४१.१॥

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥६,१४१.२॥

हे गौओं के पालक ! लाल वर्ण वाले ताँबे के शस्त्र द्वारा जोड़ी (मिथुन) का चिह्न अंकित करो । अश्विनीकुमार वैसा ही चिह्न बनाएँ, जो सन्तति के साथ अति हितकारी हो ॥६,१४१.२॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥६,१४१.३॥

जिस प्रकार देवताओं, असुरों एवं मानवों द्वारा शुभ चिह्न अंकित किए जाते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप भी अनेक प्रकार के पुष्टिकारक शुभ चिह्न अंकित करें ॥६,१४१.३॥

॥अथर्ववेद – षष्ठं काण्डम्॥

सूक्त १४२ – अन्नसमृद्धि सूक्त

जौ अन्न की प्रशंसा तथा जौ को खाने और ले जाने वाले की विनाश रहित होने की कामना

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत्॥६,१४२.१॥

हे यव ! आप उगकर ऊँचे हों । अनेक प्रकार से बढ़े । अपने रसवीर्य रूप-तेजस् से हमारे भण्डारण पात्रों को भर दें । आकाश से उपलात्मक वैज़ तुम्हें नष्ट ने करे ॥६,१४२.१॥

आश्रृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाछावदामसि ।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥६,१४२.२॥

हमारे वचनों को सुनने वाले 'यवदेव' आकाश के समान ऊँचे तथा समुद्र के समान अक्षय हों । हम इस भूमि में (वृद्धि पाने के लिए आपसे प्रार्थना करते हैं ॥६,१४२.२॥

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥६,१४२.३॥

हे यव ! आपके पास बैठने वाले कर्मकर्ता क्षयरहित हों । धान्य-राशियाँ अक्षय रहें । इन्हें घर लाने वाले एवं उपयोग करने वाले अक्षय सौभाग्य वाले हों ॥६,१४२.३॥

॥ इति षष्ठं काण्डम् ॥